BASU

कृत्रिम गर्भाधान तकनीशियन (मैत्री)
प्रशिक्षण मार्गदर्शिका

प्रसार शिक्षा निदेशालय
बिहार पशु विज्ञान विश्वविद्यालय, पटना.14

कृत्रिम गर्भाधान तकनीशियन (मैत्री)
प्रशिक्षण मार्गदर्शिका

BASU COMFED बिहार सरकार

प्रसार शिक्षा निदेशालय
बिहार पशु विज्ञान विश्वविद्यालय, पटना-14

कृत्रिम गर्भाधान तकनीशियन (मैत्री) प्रशिक्षण मार्गदर्शिका

संरक्षक : **डॉ. इन्द्रजीत सिंह**, कुलपति
बिहार पशु विज्ञान विश्वविद्यालय, पटना

मुख्य सम्पादक : **डॉ. निर्मल सिंह दहिया**, निदेशक
प्रसार शिक्षा, बिहार पशु विज्ञान विश्वविद्यालय, पटना

सम्पादक : **डॉ. योगेंद्र सिंह जादौन**, उप-निदेशक
प्रसार शिक्षा, बिहार पशु विज्ञान विश्वविद्यालय, पटना
: **डॉ. आलोक कुमार**, सहायक प्राध्यापक
पशु मादा रोग एवं प्रसुति विज्ञान विभाग एवं समन्वयक, मैत्री
: **डॉ. अनुराधा कुमारी**, सहायक प्राध्यापक
गव्य रसायन विभाग, संजय गॉधी गव्य प्रौद्योगिकी संस्थान, पटना

आर्थिक सहयोग : बिहार स्टेट मिल्क को ऑपरेटिव फेडरेशन (कॉम्फेड) द्वारा सहयोग प्राप्त
प्रकाशन वर्ष : 2026
प्रकाशन संख्या : 86/2026/DEE/BASU/Patna

© **स्वत्वाधिकार**

ISBN:978-81-959294-1-2

बिहार पशु चिकित्सा महाविद्यालय, पटना

स्वत्वाधिकारी की पुर्वलिखित अनुमति के बिना इस पुस्तक (मैनुअल) का पूर्णतः या अंशतः किसी भी भारतीय या अभारतीय भाषा में संक्षिप्त या परिवर्धित रूप में किसी भी प्रकार का और किसी भी तकनीक से पुनरूत्पादन और पुनः मुद्रण पूरी तरह से वर्जित है। केवल पत्र-पत्रिकाओं में समीक्षा हेतु इसमें से छोटे उद्धरण प्रकाशित किए जा सकते हैं।

प्रत्याख्यान

इस पुस्तक (मैनुअल) में संकलित जानकारी को यथा संभव यथार्थ एवं त्रुटिरहित रखने का प्रयास किया गया है, परन्तु फिर भी संभव है कि कुछ त्रुटियॉ शेष रह जायें। अतः पाठकों से आग्रह है कि इसमें वर्णित तथ्यों के बारे में संशय की स्थिति में सम्बन्धित वैज्ञानिकों, पदाधिकारियों, संस्थानों, व्यक्तियों, संदर्भ ग्रन्थों आदि से सम्पर्क कर वास्तविक स्थिति से अवगत हो लें। इसमें उद्धृत सभी निर्देशों के अनुपालन के पूर्व उनके बारे में पूर्णतया आशवस्त हो लें। इसमें किसी प्रकार के दावे या विवाद के लिए विश्वविद्यालय एवं मुद्रक उत्तरदायी नहीं होगा।

मुद्रकः रिद्धिमॉ इन्टरप्राईजेज, राजेन्द्रनगर, पटना-800016

बिहार पशु विज्ञान विश्वविद्यालय
बिहार पशु चिकित्सा महाविद्यालय प्रांगण, पटना–800014

BIHAR ANIMAL SCIENCES UNIVERSITY
BIHAR VETERINARY COLLEGE CAMPUS, PATNA-800014

डॉ0 इन्द्रजीत सिंह
कुलपति
Dr. Inderjeet Singh
Vice Chancellor

☎ 0612-2222221
+91-94728-64654
Email : vc-basu-bih@gov.in
vicechancellorbasu@gmail.com

संदेश

मुझे अत्यंत प्रसन्नता एवं गर्व का अनुभव हो रहा है कि प्रसार शिक्षा निदेशालय, बिहार पशु विज्ञान विश्वविद्यालय, पटना द्वारा कृत्रिम गर्भाधान तकनीशियन (**MAITRI**) प्रशिक्षण कार्यक्रम के अंतर्गत **"प्रशिक्षण मार्गदर्शिका"** का प्रकाशन किया जा रहा है। पशुपालन एवं डेयरी क्षेत्र बिहार की ग्रामीण अर्थव्यवस्था का एक महत्वपूर्ण आधार है तथा किसानों, विशेषकर छोटे एवं सीमांत पशुपालकों की आय वृद्धि एवं आजीविका सुदृढ़ीकरण में इसकी महत्वपूर्ण भूमिका है। राज्य में दुग्ध उत्पादन, उन्नत नस्ल संवर्धन तथा पशुधन उत्पादकता बढ़ाने में कृत्रिम गर्भाधान तकनीक अत्यंत प्रभावी सिद्ध हो रही है।

बिहार सरकार एवं भारत सरकार के संयुक्त प्रयासों से राज्य में पशुधन विकास कार्यक्रमों का तीव्र विस्तार हुआ है। हाल के वर्षों में बिहार में कृत्रिम गर्भाधान सेवाओं में उल्लेखनीय प्रगति दर्ज की गई है। वर्ष 2024–25 के दौरान राज्य में लगभग 36.9 लाख कृत्रिम गर्भाधान किए गए, जो पशुधन प्रजनन सेवाओं के विस्तार तथा किसानों की बढ़ती जागरूकता का परिचायक है। साथ ही, बिहार में MAITRI कार्यक्रम के माध्यम से ग्रामीण युवाओं को प्रशिक्षित कर घर–घर कृत्रिम गर्भाधान सेवाएँ उपलब्ध कराने का सराहनीय प्रयास किया जा रहा है।

कृत्रिम गर्भाधान तकनीक न केवल उन्नत नस्ल के पशुओं की संख्या बढ़ाने में सहायक है, बल्कि दुग्ध उत्पादन, रोग प्रतिरोधक क्षमता तथा पशुपालकों की आय में वृद्धि सुनिश्चित करने में भी महत्वपूर्ण भूमिका निभाती है। डेयरी, मत्स्य एवं पशु संसाधन विभाग के अंतर्गत बिहार पशुधन विकास अभिकरण (BLDA) द्वारा राज्य में वैज्ञानिक पशु प्रजनन सेवाओं को सुदृढ़ करने हेतु अनेक महत्वपूर्ण पहलें की जा रही हैं।

मुझे पूर्ण विश्वास है कि यह **"कृत्रिम गर्भाधान तकनीशियन (MAITRI) प्रशिक्षण मार्गदर्शिका"** प्रशिक्षणार्थियों, पशुपालन प्रसार कार्यकर्ताओं, तकनीशियनों एवं पशुपालकों के लिए अत्यंत उपयोगी सिद्ध होगी। यह मार्गदर्शिका वैज्ञानिक जानकारी, व्यवहारिक प्रशिक्षण तथा आधुनिक तकनीकों के माध्यम से पशुधन विकास कार्यक्रमों को नई दिशा प्रदान करेगी।

मैं इस महत्वपूर्ण प्रकाशन से जुड़े सभी वैज्ञानिकों, विशेषज्ञों एवं आयोजकों को हार्दिक बधाई एवं शुभकामनाएँ देता हूँ तथा आशा करता हूँ कि यह मार्गदर्शिका बिहार में पशुधन विकास एवं ग्रामीण समृद्धि के लक्ष्य की प्राप्ति में मील का पत्थर सिद्ध होगी।

डॉ इन्द्रजीत सिंह
(कुलपति)
बिहार पशु विज्ञान विश्वविद्यालय, पटना

BIHAR ANIMAL SCIENCES UNIVERSITY
BIHAR VETERINARY COLLEGE CAMPUS, PATNA- 800014
Directorate of Extension Education

Dr. Nirmal Singh Dahiya
Director Extension Education

Ph. No. : 0612-2227261 Email: deebasupatna@gmail.com

संदेश

मुझे अत्यंत प्रसन्नता है कि प्रसार शिक्षा निदेशालय, बिहार पशु विज्ञान विश्वविद्यालय, पटना द्वारा कृत्रिम गर्भाधान तकनीशियन (MAITRI) प्रशिक्षण कार्यक्रम के अंतर्गत **"प्रशिक्षण मार्गदर्शिका"** का प्रकाशन किया जा रहा है। यह मार्गदर्शिका पशुपालन एवं डेयरी क्षेत्र से जुड़े प्रशिक्षुओं, तकनीशियनों, पशु स्वास्थ्य कार्यकर्ताओं तथा पशुपालकों के लिए एक उपयोगी एवं व्यवहारिक संदर्भ सामग्री के रूप में कार्य करेगी।

कृत्रिम गर्भाधान तकनीक पशुधन के नस्ल सुधार, दुग्ध उत्पादन में वृद्धि, पशुओं की उत्पादकता संवर्धन तथा ग्रामीण अर्थव्यवस्था को सुदृढ़ बनाने में अत्यंत महत्वपूर्ण भूमिका निभाती है। वर्तमान समय में वैज्ञानिक एवं व्यावसायिक पशुपालन को बढ़ावा देने के लिए प्रशिक्षित एवं दक्ष तकनीशियनों की आवश्यकता निरंतर बढ़ रही है। इसी उद्देश्य की पूर्ति हेतु MAITRI प्रशिक्षण कार्यक्रम एक दूरदर्शी एवं प्रभावी पहल के रूप में कार्य कर रहा है, जो ग्रामीण युवाओं को आधुनिक तकनीकी ज्ञान, व्यावहारिक कौशल तथा स्वरोजगार के अवसर प्रदान कर आत्मनिर्भर बनाने में सहायक सिद्ध हो रहा है।

यह प्रशिक्षण मार्गदर्शिका सरल, सहज एवं व्यवहारिक शैली में तैयार की गई है, जिसमें कृत्रिम गर्भाधान की वैज्ञानिक विधियाँ, पशु प्रबंधन, स्वच्छता एवं जैव–सुरक्षा उपाय, रोग नियंत्रण, प्रजनन संबंधी सावधानियाँ तथा क्षेत्रीय कार्यों से संबंधित महत्वपूर्ण विषयों को समाहित किया गया है। साथ ही, प्रशिक्षणार्थियों की व्यावहारिक दक्षता को विकसित करने हेतु आवश्यक तकनीकी जानकारियों को भी समुचित रूप से प्रस्तुत किया गया है।

मुझे पूर्ण विश्वास है कि यह प्रकाशन प्रशिक्षुओं के ज्ञानवर्धन, कौशल विकास एवं कार्यकुशलता में महत्वपूर्ण योगदान देगा तथा राज्य में पशुधन विकास एवं गुणवत्तापूर्ण पशु प्रजनन सेवाओं के विस्तार को और अधिक सशक्त बनाएगा।

इस उपयोगी एवं महत्त्वपूर्ण मार्गदर्शिका के प्रकाशन हेतु मैं सभी वैज्ञानिकों, विषय विशेषज्ञों, प्रशिक्षकों एवं सहयोगियों को हार्दिक बधाई एवं शुभकामनाएँ देता हूँ तथा उनके प्रयासों की सराहना करता हूँ।

डॉ निर्मल सिंह दहिया
(निदेशक प्रसार शिक्षा)
बिहार पशु विज्ञान विश्वविद्यालय, पटना

अनुक्रमणिका

क्र.सं.	विषय	पृ.सं.
1.	राष्ट्रीय गोकुल मिशन एवं मैत्री की भूमिका योगेंद्र सिंह जादौन एवं निर्मल सिंह दहिया	1–4
2.	पशुपालकों के लिए बिहार पशु विज्ञान विश्वविद्यालय की प्रसार सेवाएँ योगेंद्र सिंह जादौन एवं निर्मल सिंह दहिया	5–8
3.	फसल–पशुपालन आधारित एकीकृत कृषि प्रणाली निर्मल सिंह दहिया एवं योगेंद्र सिंह जादौन	9–12
4.	विभिन्न गाय की नस्लें: उत्पादन एवं प्रजनन मापदंड जय प्रकाश गुप्ता एवं योगेंद्र सिंह जादौन	13–19
5.	बिहार के दुग्ध क्षेत्र की वर्तमान स्थिति एवं भावी विकास की दिशा निर्मल सिंह दहिया एवं योगेंद्र सिंह जादौन	20–25
6.	दुधारू पशुओं की जूनोटिक बीमारियाँ प्रबंधन एवं सार्वजनिक स्वास्थ्य महत्व अंजय एवं प्रिति सेन वर्मा	26–35
7.	बुनियादी पशु स्वास्थ्य देखभाल, प्राथमिक उपचार और आपातकालीन प्रबंधन ज्ञान देव सिंह	36–39
8.	डेयरी पशुओं में वीर्य जमाव के उचित स्थान का महत्व अंकेश कुमार	40–43
9.	पोषण के मूलभूत पहलू एवं राशन संतुलन की अवधारणा कौशलेन्द्र कुमार	44–47
10.	पशुओं में कृत्रिम गर्भाधान एवं उनके महत्व एस० के० शीतल	48–51
11.	सांढ़ों से वीर्य का संग्रह, मूल्यांकन, प्रसंस्करण, संरक्षण एवं पैलकग एस० के० शीतल	52–55
12.	गाय–भैंस के नर प्रजनन अंग चन्द्र शेखर आजाद एवं दीपशिखा	56–59
13.	विभिन्न पशुओं में वीर्य संग्रहण आलोक कुमार एवं जे.के. प्रसाद	60–64
14.	मानव जीवन में पशुपालन का महत्व अजीत कुमार	65–73
15.	वीर्य संग्रह, प्रसंस्करण, संरक्षण और कोल्ड चेन अनुरक्षण आलोक कुमार एवं जे.के. प्रसाद	74–77

क्र.सं.	विषय	पृ.सं.
16.	**दुधारू पशुओं का आवास प्रबंधन** एस. पी. साहु एवं संजय कुमार	78–88
17.	**गायों में कृत्रिम गर्भाधान की मानक संचालन प्रक्रिया** दीप्यमान सेनगुप्ता	89–92
18.	**गर्भाधान के दौरान एवं बाद में पशु की देखभाल** चन्द्र शेखर आजाद एवं दीपशिखा	93–96
19.	**देशी गाय एवं भैंसों के नस्लों का चयनात्मक प्रजनन के द्वारा संरक्षण तथा विकास** जय प्रकाश गुप्ता	97–102
20.	**ब्याने से पहले और बाद में पशुओं की देखभाल एवं प्रबंधन** चन्द्र शेखर आजाद एवं दीपशिखा	103–106
21.	**गाय–भैंस में प्रमुख रोगों के विरुद्ध टीकाकरण** मृत्युंजय कुमार एवं आशीष त्रिपाठी	107–110
22.	**गाय एवं भैंस में थनैला रोग (मैस्टाइटिस)** मृत्युंजय कुमार एवं विवेक कृति	111–114
24.	**दुधारु पशुओं में संक्रमण काल कारण शरीर में बदलाव समस्याएँ और प्रसव के बाद उत्पादन पर प्रभाव** सोनिका वर्मा एवं प्रभजोत कौर	115–117
25.	**दुधारु पशुओं में उत्पादन रोग कारण पहचान प्रभाव और आसान बचाव के तरीके** सोनिका वर्मा एवं मुस्कान कुमारी	118–121
26.	**दुधारू पशुओं में रिपीट ब्रीडिंगः कारण, निदान एवं प्रबंधन** आलोक कुमार	122–129
27.	**कृत्रिम गर्भाधान केन्द्र की स्थापना** आलोक कुमार	130–134
28.	**दुधारू पशुओं में संक्रमण काल का प्रबंधन एवं पशु उत्पादकता पर उसका प्रभाव** आलोक कुमार	135–137
29.	**किसान स्तर पर स्वच्छ (हाईजीनिक) दुग्ध उत्पादन एवं इसका महत्व** अनुराधा कुमारी एवं नीरज कुमार सिंह	138–142
30.	**पशुपालन सबंधी कारकों का दूध की संरचना पर प्रभाव** अनुराधा कुमारी एवं नीरज कुमार सिंह	143–149

राष्ट्रीय गोकुल मिशन एवं MATRIs की भूमिका

योगेंद्र सिंह जादौन एवं निर्मल सिंह दहिया
प्रसार शिक्षा निदेशालय, बिहार पशु विज्ञान विश्वविद्यालय, पटना–14

सारांश

राष्ट्रीय गोकुल मिशन (Rashtriya Gokul Mission – RGM) भारत सरकार की एक प्रमुख योजना है, जिसका उद्देश्य देशी गोवंश नस्लों का संरक्षण, संवर्धन एवं आनुवंशिक सुधार करना है। यह मिशन दुग्ध उत्पादन में सतत वृद्धि, किसानों की आय बढ़ाने तथा पशुधन क्षेत्र को आत्मनिर्भर बनाने की दिशा में एक महत्वपूर्ण पहल है। इस मिशन के प्रभावी क्रियान्वयन में मल्टी–पर्पज आर्टिफिशियल इंसेमिनेशन टेक्नीशियन (MAITRIs) की भूमिका अत्यंत महत्वपूर्ण है, क्योंकि वे कृत्रिम गर्भाधान, पशुपालकों को परामर्श, पशु प्रजनन सेवाओं की पहुंच तथा सरकारी योजनाओं के जमीनी स्तर पर कार्यान्वयन में सेतु का कार्य करते हैं। प्रस्तुत अध्याय में राष्ट्रीय गोकुल मिशन का समग्र अवलोकन, इसके उद्देश्य, घटक, उपलब्धियां तथा (MAITRIs) की भूमिका, जिम्मेदारियों और महत्व का विस्तृत वर्णन किया गया है।

सूचक शब्द : राष्ट्रीय गोकुल मिशन, देशी गोवंश, कृत्रिम गर्भाधान, MAITRI, पशु प्रजनन, दुग्ध उत्पादन।

1. परिचय

भारत विश्व का सबसे बड़ा दुग्ध उत्पादक देश है और पशुधन क्षेत्र ग्रामीण अर्थव्यवस्था की रीढ़ माना जाता है। देश की विशाल गोवंश आबादी में देशी नस्लों का विशेष महत्व है, जो स्थानीय परिस्थितियों के प्रति अधिक सहनशील, रोग प्रतिरोधक तथा कम लागत में उत्पादन देने वाली होती हैं। हालांकि, विगत दशकों में अनियंत्रित संकरण, नस्लीय क्षरण और वैज्ञानिक प्रजनन सेवाओं की कमी के कारण देशी नस्लों की गुणवत्ता एवं संख्या में गिरावट देखी गई है।

इन चुनौतियों को ध्यान में रखते हुए भारत सरकार ने वर्ष 2014 में राष्ट्रीय गोकुल मिशन की शुरुआत की। इस मिशन का मुख्य उद्देश्य देशी गोवंश नस्लों का संरक्षण एवं आनुवंशिक सुधार करते हुए दुग्ध उत्पादकता बढ़ाना है। मिशन की सफलता में प्रशिक्षित मानव संसाधन की भूमिका अत्यंत महत्वपूर्ण है, जिसमें MAITRIs एक अग्रणी कड़ी के रूप में उभरकर सामने आए हैं।

2. राष्ट्रीय गोकुल मिशनःएक अवलोकन

2.1 पृष्ठभूमि एवं आवश्यकता

देशी गोवंश नस्लें जैसे गिर, साहीवाल, थारपारकर, रेड सिंधी आदि भारतीय जलवायु के अनुकूल हैं, परंतु इनके वैज्ञानिक प्रजनन एवं व्यवस्थित संरक्षण के अभाव में इनकी उत्पादक क्षमता का पूर्ण उपयोग नहीं हो पा रहा था। इसी पृष्ठभूमि में राष्ट्रीय गोकुल मिशन को राष्ट्रीय पशुधन मिशन के अंतर्गत प्रारंभ किया गया।

2.2 मिशन के उद्देश्य

राष्ट्रीय गोकुल मिशन के प्रमुख उद्देश्य निम्नलिखित हैंः

- देशी गोवंश नस्लों का संरक्षण एवं संवर्धन।
- वैज्ञानिक प्रजनन तकनीकों द्वारा आनुवंशिक सुधार।
- दुग्ध उत्पादन एवं उत्पादकता में वृद्धि।
- किसानों की आय में सतत वृद्धि।
- गोवंश आधारित आजीविका को बढ़ावा देना।

2.3 प्रमुख घटक

राष्ट्रीय गोकुल मिशन के अंतर्गत निम्नलिखित प्रमुख घटक शामिल हैंः

- गोकुल ग्रामों की स्थापना।
- राष्ट्रीय गोकुल मिशन केंद्रों का विकास।
- उन्नत एवं उच्च गुणवत्ता वाले सांडों का उत्पादन।
- कृत्रिम गर्भाधान नेटवर्क का विस्तार।
- देशी नस्लों की पहचान एवं पंजीकरण।
- प्रशिक्षण एवं क्षमता निर्माण कार्यक्रम।

3. कृत्रिम गर्भाधान एवं प्रजनन सेवाओं का महत्व

कृत्रिम गर्भाधान (Artificial Insemination – AI) पशु प्रजनन की एक वैज्ञानिक एवं प्रभावी तकनीक है, जिसके माध्यम से श्रेष्ठ आनुवंशिक गुणों वाले सांडों का सीमेन उपयोग कर पशुओं की नस्ल सुधार की जा सकती है। इसके प्रमुख लाभ हैंः

- तेजी से आनुवंशिक सुधार।
- संक्रामक रोगों की रोकथाम।
- प्रजनन लागत में कमी।

- दूर–दराज क्षेत्रों तक सेवाओं की पहुंच।
- राष्ट्रीय गोकुल मिशन में AI को एक केंद्रीय रणनीति के रूप में अपनाया गया है, जिसके सफल क्रियान्वयन में MAITRIs की भूमिका अत्यंत महत्वपूर्ण है।

4. MAITRIs: अवधारणा एवं भूमिका

4.1 MAITRI की अवधारणा

MAITRI (Multi-Purpose Artificial Insemination Technician) ऐसे प्रशिक्षित ग्रामीण युवाओं को कहा जाता है, जिन्हें कृत्रिम गर्भाधान, पशु प्रजनन प्रबंधन, प्राथमिक पशु स्वास्थ्य सेवाएं तथा किसानों को तकनीकी परामर्श देने का प्रशिक्षण दिया जाता है।

4.2 MAITRIs की प्रमुख भूमिकाएं

MAITRIs राष्ट्रीय गोकुल मिशन के जमीनी स्तर के कार्यकर्ता होते हैं। उनकी प्रमुख भूमिकाएं निम्नलिखित हैं:

- पशुओं में समय पर एवं गुणवत्तापूर्ण कृत्रिम गर्भाधान करना।
- उन्नत सीमेन का सही उपयोग सुनिश्चित करना।
- पशुपालकों को हीट डिटेक्शन एवं प्रजनन प्रबंधन की जानकारी देना।
- गर्भ परीक्षण एवं रिकॉर्ड संधारण में सहयोग।
- सरकारी योजनाओं की जानकारी किसानों तक पहुंचाना।
- पशुधन डेटा का संकलन एवं रिपोर्टिंग।

4.3 MAITRIs का सामाजिक एवं आर्थिक महत्व

MAITRIs न केवल पशुपालकों की उत्पादकता बढ़ाने में सहायक होते हैं, बल्कि ग्रामीण युवाओं के लिए स्वरोजगार का सशक्त माध्यम भी बनते हैं। इससे ग्रामीण अर्थव्यवस्था को मजबूती मिलती है और पशुधन सेवाओं का विकेंद्रीकरण संभव होता है।

5. राष्ट्रीय गोकुल मिशन में MAITRIs का योगदान

राष्ट्रीय गोकुल मिशन के अंतर्गत MAITRIs की भागीदारी से निम्नलिखित सकारात्मक प्रभाव देखे गए हैं:

- कृत्रिम गर्भाधान कवरेज में वृद्धि।
- देशी नस्लों के संरक्षण को बढ़ावा।
- पशुपालकों में वैज्ञानिक दृष्टिकोण का विकास।
- दुग्ध उत्पादन एवं प्रजनन दक्षता में सुधार।

6. चुनौतियां एवं भविष्य की दिशा

यद्यपि राष्ट्रीय गोकुल मिशन और MAITRIs ने उल्लेखनीय उपलब्धियां हासिल की हैं, फिर भी कुछ चुनौतियां बनी हुई हैं, जैसेः

- सतत प्रशिक्षण एवं पुनःप्रशिक्षण की आवश्यकता।
- प्रोत्साहन एवं मानदेय से संबंधित मुद्दे।
- दूरस्थ क्षेत्रों में लॉजिस्टिक समस्याएं।

भविष्य में डिजिटल तकनीकों, मोबाइल ऐप्स, बेहतर मॉनिटरिंग और मजबूत संस्थागत सहयोग के माध्यम से MAITRIs की भूमिका को और अधिक प्रभावी बनाया जा सकता है।

7. निष्कर्ष :

राष्ट्रीय गोकुल मिशन भारत में देशी गोवंश संरक्षण एवं दुग्ध उत्पादन बढ़ाने की दिशा में एक दूरदर्शी पहल है। इस मिशन की सफलता काफी हद तक जमीनी स्तर पर कार्यरत MAITRIs पर निर्भर करती है। MAITRIs न केवल वैज्ञानिक प्रजनन सेवाओं को गांव–गांव तक पहुंचाते हैं, बल्कि पशुपालकों और सरकार के बीच एक सशक्त सेतु के रूप में कार्य करते हैं। उचित प्रशिक्षण, प्रोत्साहन और संस्थागत समर्थन के साथ MAITRIs राष्ट्रीय गोकुल मिशन को नई ऊंचाइयों तक ले जाने में महत्वपूर्ण भूमिका निभा सकते हैं।

संदर्भ (References):

भारत सरकार, पशुपालन एवं डेयरी विभाग. राष्ट्रीय गोकुल मिशन दिशा–निर्देश।

DAHD (Department of Animal Husbandry & Dairying)- Annual Reports.

ICAR- Breeding Strategies for Indigenous Cattle.

राष्ट्रीय पशुधन मिशन से संबंधित प्रकाशन एवं रिपोर्ट्स।

पशुपालकों के लिए बिहार पशु विज्ञान विश्वविद्यालय (BASU) की प्रसार सेवाएँ

योगेंद्र सिंह जादौन एवं निर्मल सिंह दहिया

प्रसार शिक्षा निदेशालय, बिहार पशु विज्ञान विश्वविद्यालय, पटना–14

सारांश

बिहार पशु विज्ञान विश्वविद्यालय, पटना, राज्य के पशुपालन क्षेत्र को सशक्त, टिकाऊ और व्यावसायिक रूप देने हेतु पशुपालकों के लिए विविध प्रकार की प्रसार सेवाएँ प्रदान करता है। बासु के प्रसार शिक्षा निदेशालय द्वारा ग्रामीण पशुपालकों के लिए प्रशिक्षण, परामर्श, स्वास्थ्य शिविर, डिजिटल प्लेटफॉर्म, प्रदर्शनियाँ तथा साझेदारी मॉडल सहित व्यापक प्रसार गतिविधियाँ संचालित की जा रही हैं। इन पहलों का उद्देश्य अनुसंधान एवं विज्ञान आधारित तकनीकों को किसानों के खेतों और पशु फार्मों तक पहुंचाना है जिससे पशु उत्पादकता, स्वास्थ्य, आय तथा ग्रामीण आजीविका में वृद्धि हो सके।

सूचक शब्द : प्रसार सेवाएँ, पशुपालन, किसान प्रशिक्षण, कृषि विज्ञान केंद्र, पशु स्वास्थ्य, डिजिटल विस्तार, कृषि ज्ञान वाहन।

परिचय

बिहार पशु विज्ञान विश्वविद्यालय का प्रसार शिक्षा निदेशालय बिहार के पशुपालन क्षेत्र को सशक्त एवं रूपांतरित करने में एक महत्वपूर्ण भूमिका निभा रहा है। यह निदेशालय जमीनी स्तर पर ज्ञान, कौशल एवं व्यवहार में सुधार लाने के उद्देश्य से विभिन्न प्रकार की विस्तार एवं आउटरीच सेवाएँ प्रदान करता है। प्रसार शिक्षा निदेशालय, अनुसंधान संस्थानों द्वारा विकसित वैज्ञानिक नवाचारों और उनके व्यावहारिक उपयोग के बीच एक सशक्त सेतु का कार्य करता है, जिससे पशुपालकों, ग्रामीण उद्यमियों तथा फील्ड स्तर के कार्मिकों को प्रत्यक्ष लाभ मिल सके।

प्रसार शिक्षा निदेशालय, विश्वविद्यालय के अंतर्गत संचालित पशु चिकित्सा महाविद्यालयों, पशु फार्मों, पशु चिकित्सा क्लिनिकल कॉम्प्लेक्स, कृषि विज्ञान केंद्रों ,कृषि प्रौद्योगिकी सूचना केंद्र तथा अन्य आउटरीच इकाइयों की विशेषज्ञता एवं अवसंरचना का उपयोग कर किसानों को परामर्श सेवाएँ, फील्ड विजिट, ऑन–फार्म प्रदर्शन तथा नवीन तकनीकों को किसानो तक पहुँचाने है काम करता है।

ये समन्वित विस्तार प्रयास न केवल तकनीकी ज्ञान उपलब्ध कराते हैं, बल्कि व्यावहारिक मार्गदर्शन एवं सतत फॉलो–अप के माध्यम से पशु उत्पादकता एवं लाभप्रदता बढ़ाने में सहायक होते हैं।

निदेशालय द्वारा किसान प्रशिक्षण कार्यक्रम, ग्रामीण युवाओं हेतु व्यावसायिक पाठ्यक्रम, नई तकनीकों के प्रदर्शन, पशु मेलों एवं प्रदर्शनियों, समग्र पशुपालन विकास हेतु ग्राम गोद लेने की पहल तथा डोर–स्टेप सलाह सेवाओं का आयोजन किया जाता है। **"बासु कृषि ज्ञान वाहन"** जैसी मोबाइल सलाह सेवाओं के माध्यम से दूरस्थ एवं वंचित क्षेत्रों में त्वरित पशु चिकित्सा सेवाएँ, फार्म परामर्श एवं सीखने के अवसर उपलब्ध कराए जा रहे हैं।

इसके अतिरिक्त, प्रसार शिक्षा निदेशालय स्थानीय भाषाओं में प्रकाशन, रेडियो एवं टीवी कार्यक्रमों, सोशल मीडिया तथा आईसीटी आधारित डिजिटल प्लेटफार्मों के माध्यम से जागरूकता सृजन एवं सूचना प्रसार पर विशेष बल देता है। ये विविध संचार माध्यम विभिन्न साक्षरता स्तर वाले किसानों तक जानकारी पहुँचाने में सहायक हैं।

सतत क्षमता निर्माण, सहभागितापूर्ण प्रौद्योगिकी हस्तांतरण तथा पशुपालकों के सशक्तिकरण के माध्यम से प्रसार शिक्षा निदेशालय, पशु उत्पादकता बढ़ाने, आजीविका सुरक्षा सुनिश्चित करने तथा बिहार के ग्रामीण विकास के व्यापक लक्ष्यों को प्राप्त करने में महत्वपूर्ण योगदान दे रहा है। यह प्रयास राज्य एवं राष्ट्रीय प्राथमिकताओं के अनुरूप पशुपालन को अधिक टिकाऊ, लाभकारी, बाजारोन्मुख एवं लचीला बनाने की दिशा में एक सशक्त कदम है।

प्रसार शिक्षा निदेशालय प्रमुख गतिविधियाँ

1. किसान प्रशिक्षण कार्यक्रमः विश्वविद्यालय के प्रसार शिक्षा निदेशालय द्वारा, परिसर एवं बाहर नियमित रूप से किसान, पशुपालक, पशु चिकित्सा अधिकारी, दुग्ध पेशेवर, पशुधन सहायक एवं ग्रामीण युवाओं हेतु प्रशिक्षण आयोजित किए जाते हैं। जैसे कि

- वैज्ञानिक दुग्ध उत्पादन एवं दुग्ध प्रसंस्करण।
- पशु चिकित्सा निदान एवं उपचार तकनीक।
- बकरी एवं पोल्ट्री पालन प्रबंधन।
- चारा उत्पादन एवं साइलेज निर्माण।
- स्वच्छ दुग्ध उत्पादन पद्धतियाँ ।
- पशु स्वास्थ्य प्रबंधन एवं टीकाकरण।

2. कृषि विज्ञान केंद्र, जमुई की स्थापना

बिहार पशु विज्ञान विश्वविद्यालय पटना द्वारा जनजातीय एवं पिछड़े क्षेत्रों में विश्वविद्यालय की पहुँच बढ़ाने हेतु KVK जमुई की स्थापना में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई गई।

कृषि विज्ञान केंद्र, जमुई की गतिविधियाँ

फ्रंटलाइन डेमोंस्ट्रेशन (FLDs) एवं ऑन–फार्म ट्रायल्स (OFTs) :फ्रंटलाइन डेमोंस्ट्रेशन (FLDs) एवं ऑन–फार्म ट्रायल्स (OFTs) के माध्यम से पशुपालन तकनीकों का मूल्यांकन एवं प्रसार।

KVK जमुई में प्रदर्शन इकाइयाँ : बकरी, पोल्ट्री, सुअर एवं गौ पालन की प्रदर्शन इकाइयों की स्थापना की गई है। इसके अतिरिक्त नर्सरी इकाई, दो बोरवेल, कृषि यंत्र शेड, किसान परामर्श केंद्र एवं बीज उत्पादन इकाई स्थापित की गई है, जिससे समग्र कृषिदृपशुपालन विस्तार को बल मिला है।

3. पशु स्वास्थ्य एवं जागरूकता शिविर : दूरस्थ एवं ग्रामीण क्षेत्रों में निःशुल्क पशु चिकित्सा शिविर का आयोजन करना ।

कृमिनाशन।

रोग निदान एवं उपचार।

बांझपन एवं प्रजनन विकार उपचार।

जूनोटिक रोगों एवं स्वच्छता पर जागरूकता।

4. किसान–वैज्ञानिक संवाद कार्यक्रम

फील्ड स्तर की समस्याओं का समाधान।

अनुसंधान एवं विस्तार हेतु फीडबैक।

सहभागितापूर्ण सीख एवं अनुभव साझा करना।

5. सहयोग एवं नेटवर्किंग : BASU का BAMETI पशु एवं मत्स्य संसाधन विभाग, NABARD, COMFED, JEEViKA, AFRD, ICAR-RCER, ICAR-ATARI, NCW, डेयरी विकास विभाग आदि से सशक्त सहयोग है।

6. सूचना, शिक्षा एवं संचार गतिविधियाँ

क्षेत्रीय भाषाओं में पुस्तिकाएँ, लीफलेट, मैनुअल।

शैक्षणिक वीडियो एवं रेडियो / टीवी कार्यक्रम।

मोबाइल ऐप, SMS, WhatsApp, विश्वविद्यालय वेबसाइट।

7. प्रदर्शनियाँ, मेले एवं विशेष दिवस आयोजन

पशु मेला, विश्व पशु चिकित्सा दिवस, विश्व दुग्ध दिवस।

राज्यध्राष्ट्रीय प्रदर्शनियों में सहभागिता।

8. प्रमुख फ्लैगशिप कार्यक्रम

कैटल एक्सपा–2023 : बिहार का ऐतिहासिक कैटल एक्सपो आयोजित।

पशुपालन दर्शिका' (हिंदी पत्रिका) : पशुपालकों हेतु त्रैमासिक हिंदी पत्रिका।

ई–किसान समाधानः WhatsApp आधारित डिजिटल सलाह सेवा।

BASU **कृषि ज्ञान वाहन** : चौथे कृषि रोडमैप के अंतर्गत मोबाइल ज्ञान प्रसार पहल।

ग्राम गोद कार्यक्रम एवं Farmer FIRST Project: पटना के दरियापुर तथा वैशाली के सिधौली एवं सेन्दुआरी गाँवों को गोद लेकर समेकित फसलदृपशुपालन

विकास।

डॉग, कैट एंड गोट एक्सपो–2025

निष्कर्ष

बिहार पशु विज्ञान विश्वविद्यालय की प्रसार सेवाएँ राज्य के पशुपालन क्षेत्र में परिवर्तनकारी भूमिका निभा रही हैं। यह प्रसार सेवाएँ अनुसंधान और विज्ञान आधारित तकनीकों को सीधे किसानों के खेतों और पशु फार्मों तक लाने में सक्षम हुए हैं। प्रशिक्षण, स्वास्थ्य सेवाएँ, डिजिटल प्लेटफॉर्म, मोबाइल विस्तार सेवाएँ और साझेदारी मॉडल के द्वारा बासु ने ग्रामीण पशुपालकों को सक्षम बनाया है जिससे पशु उत्पादकता, स्वास्थ्य, आय तथा सामाजिक–आर्थिक प्रगति में उल्लेखनीय सुधार हुआ है।

आगे चलकर इन सेवाओं का विस्तार, स्थानीय समुदायों के सशक्तिकरण तथा तकनीकी नवाचारों के अनुकूलन को और भी गहरा करेगा, जिससे बिहार में पशुपालन एक आर्थिक रूप से समृद्ध और सतत व्यवसाय बन सकेगा।

फसल–पशुपालन आधारित एकीकृत कृषि प्रणाली

निर्मल सिंह दहिया एवं योगेंद्र सिंह जादौन
प्रसार शिक्षा निदेशालय, बिहार पशु विज्ञान विश्वविद्यालय, पटना–14

सारांश

फसल–पशुपालन आधारित एकीकृत कृषि प्रणाली एक समेकित कृषि पद्धति है जिसमें फसल, पशु, जल संसाधन और संसाधन चक्र का एक संतुलित मिश्रण सुनिश्चित किया जाता है। इस प्रणाली का उद्देश्य कृषि उत्पादन, खाद्य सुरक्षा, आय सुदृढ़ीकरण, संसाधनों का कुशल उपयोग, और पारिस्थितिक संतुलन को बढ़ाना है। विशेषकर बिहार जैसे कृषि प्रधान राज्य में, जहाँ छोटे एवं सीमांत किसानों की संख्या अधिक है, यह मॉडल कृषि व ग्रामीण विकास को नई दिशा प्रदान करने में सक्षम है। यह अध्याय इस प्रणाली के सिद्धांत, मॉडल, बिहार में प्रचलित रूपरेखाएं, उनकी आर्थिक उपयोगिता, लाभ–हानि और संभावनाओं पर विस्तृत चर्चा प्रस्तुत करता है।

मुख्य शब्दः एकीकृत कृषि प्रणाली, इंटीग्रेटेड क्रॉप–लाइवस्टॉक सिस्टम, कृषि–पशुपालन संयोजन, बिहार परिप्रेक्ष्य, आर्थिक विश्लेषण, संसाधन पुनर्चक्रण, ग्रामीण आजीविका।

परिचयः

पारंपरिक कृषि प्रणाली में फसल उत्पादन और पशुपालन अक्सर अलग–अलग चलते हैं, जबकि एकीकृत कृषि प्रणाली में दोनों का संयोजन किया जाता है ताकि संसाधनों का पुनर्चक्रण और अधिकतम उपयोग सुनिश्चित हो सके। बिहार जैसे राज्यों में भूमि की सीमितता, पारंपरिक खेती की कम आय, कृषि–आधारित अर्थव्यवस्था और मेहनती पशुपालकों की बड़ी संख्या को ध्यान में रखते हुए, फसल–पशुपालक आधारित एकीकृत मॉडल किसानों को विविध आय श्रोत प्रदान करता है।

परिभाषा व अवधारणा

एकीकृत कृषि प्रणाली में फसल उत्पादन और पशुपालन को परस्पर पूरक के रूप में डिजाइन किया जाता है। फायदे इस प्रकार हैंः

उत्पादन विविधता।

लागत में कमी।

पारिस्थितिक संतुलन।

आय में स्थिरता।

एकीकृत कृषि प्रणाली के सिद्धांत

संसाधन चक्र।

फसल अवशेष का पशु खाद के लिए उपयोग।

पशु अनुपूरक इनपुट (जैसे गोबर, बायोगैस की खाद)।

मल्चिंग, हरी खाद फ़सल, पशु चारागाह की उपयोगिता।

कृषि–पशुपालन संयोजन के लाभ

उत्पादन वृद्धि ।

खाद्य सुरक्षा।

पोषण संतुलन।

पर्यावरण संरक्षण।

महिला एवं परिवार की आय में वृद्धि ।

बिहार में कृषि–पशुपालन की प्रासंगिकताः बिहार कृषि प्रधान राज्य है। यहाँः फसलों और पशुपालन की परंपरा, पारंपरिक संसाधनों का सीमित उपयोग,ग्रामीण आजीविका का ज़्यादातर आधार कृषि व पशुपालन है, इसलिए एकीकृत मॉडल सामाजिक–आर्थिक रूप से अत्यंत उपयुक्त है।

प्रमुख मॉडल एवं प्रणालियाँ

1. फसल + दूध उत्पादन आधारित मॉडल

मुख्य फसलः धान, गेहूँ, मक्का, गन्ना।

पशुः गाय, भैंस।

➡ फसल अवशेष से चारागाह, गोबर से खाद, बायोगैस

2. फसल + खेत पशुधन + मुर्गी पालन

उच्च प्रोटीन उत्पाद।

अंडा, मीट, जैविक खाद।

3. मछली + फसल + पशुपालन

जल स्रोत + मछली + पशु (बकरी या भैंस)।

जल में पोषक तत्व चक्र

4. बायोगैस + कंपोस्ट + खेत उत्पादन

गोबर से बायोगैस ऊर्जा

उपशिष्ट से कंपोस्ट खेत खाद

बिहार परिप्रेक्ष्यः मॉडल और उनकी आर्थिकता

मॉडल A: फसल + दूध उत्पादन

घटक	**इनपुट लागत** (₹)	**आउटपुट लाभ** (₹)
फसल	50,000	90,000
मुर्गी (50)	20,000	40,000
बायोगैस – कंपोस्ट	40,000	60,000
कुल	1,10,000	1,90,000
नेट लाभ : (₹)**80,000/वर्ष**		

मॉडल B: फसल + मुर्गी + बायोगैस

घटक	**इनपुट लागत** (₹)	**आउटपुट लाभ** (₹)
फसल	50,000	90,000
मुर्गी (50)	20,000	40,000
बायोगैस – कंपोस्ट	40,000	60,000
कुल	1,10,000	1,90,000
नेट लाभ : (₹)**80,000/वर्ष**		

मुख्य आर्थिक फायदे (बिहार में):

निवेश पर बेहतर वापसी।

ग्रामीण परिवार की आय स्थिर।

संसाधन चक्र से लागत कटौती।

चुनौतियाँ और समाधान

चुनौतियाँ

तकनीकी ज्ञान की कमी।

वित्तीय सहायता का अभाव।

पशु स्वास्थ्य सेवाओं की सीमित उपलब्धता।

जलाशय प्रबंधन का अभाव।

समाधान

प्रशिक्षण और विस्तार शिक्षा।

पशु चिकित्सकीय सुविधाओं का विस्तार।

समूह/एसएचजी आधारित वित्तीय सहायता।

बायोगैस यूनिट सब्सिडी।

नीति एवं संवर्धन पहल

राज्य कृषि योजनाएँ ।

पशुपालन और जैविक कृषि के लिए अनुदान।

कृषि विज्ञान केंद्रों द्वारा प्रशिक्षण।

महिला किसान सशक्तिकरण प्रयास।

निष्कर्ष

फसल– पशुपालन आधारित एकीकृत कृषि प्रणाली बिहार जैसे राज्य के लिए आर्थिक, पारिस्थितिक और सामाजिक रूप से अत्यंत उपयोगी है। यह न केवल किसान की आय को मजबूत बनाती है, बल्कि संसाधनों का अधिकतम उपयोग, पर्यावरण संरक्षण और ग्रामीण आजीविका की स्थिरता सुनिश्चित करती है।

संदर्भः

राष्ट्रीय कृषि विकास योजना – बिहार।

ICAR Reports on Integrated Farming Systems (ICAR&IISWC).

कृषि विज्ञान केंद्र तकनीकी पुस्तिकाएँ ।

बिहार कृषि विश्वविद्यालय प्रकाशन।

FAO Integrated Farming Systems Reports.

विभिन्न गाय की नस्लें: उत्पादन एवं प्रजनन मापदंड

जय प्रकाश गुप्ता[1] एवं योगेंद्र सिंह जादौन[2]

[1]पशु आनुवंशिकी एवं प्रजनन विभाग, बिहार पशु चिकित्सा महाविद्यालय, बिहार एनिमल साइंस यूनिवर्सिटी, पटना

[2]गव्य प्रसार शिक्षा विभाग, संजय गाँधी गव्य प्रौद्योगिकी संस्थान, बिहार पशु विज्ञान विश्वविद्यालय, पटना

सारांश

भारत एक कृषि प्रधान देश है, जहाँ पशुपालन ग्रामीण अर्थव्यवस्था का एक प्रमुख आधार है। गाय न केवल दूध उत्पादन का महत्वपूर्ण स्रोत है, बल्कि इसका सांस्कृतिक, सामाजिक और आर्थिक महत्व भी अत्यंत विशेष है। देश के विभिन्न भागों में भिन्न–भिन्न जलवायु, भौगोलिक परिस्थितियों, चारे की उपलब्धता और प्रबंधन प्रणालियों के कारण स्वदेशी, विदेशी तथा संकर गायों की अनेक नस्लें विकसित हुई हैं। इन नस्लों में दुग्ध उत्पादन क्षमता और प्रजनन व्यवहार में पर्याप्त विविधता देखने को मिलती है। देशी गायों की नस्लें जैसे साहीवाल, गिर, रेड सिंधी और थारपारकर मध्यम दुग्ध उत्पादन के साथ–साथ कठोर जलवायु, रोगों और सीमित संसाधनों में भी अच्छी प्रजनन स्थिरता दिखाती हैं। विदेशी नस्लें जैसे होल्सटीन फ्रिजियन और जर्सी अधिक दुग्ध उत्पादन के लिए जानी जाती हैं, लेकिन इनके लिए उन्नत प्रबंधन, संतुलित आहार और बेहतर स्वास्थ्य सुविधाएँ आवश्यक होती हैं। संकर नस्लें देशी और विदेशी नस्लों के गुणों का संतुलन प्रस्तुत करती हैं, जिससे उत्पादन और प्रजनन दोनों में सुधार संभव होता है। दुग्ध उत्पादन, दुग्धावधि, दूध की गुणवत्ता, आयु–प्रथम ब्यांत और ब्यांत अंतराल जैसे मापदंड पशुपालन की आर्थिक सफलता को सीधे प्रभावित करते हैं। उचित नस्ल चयन, वैज्ञानिक प्रबंधन, संतुलित पोषण और स्वास्थ्य सेवाओं के माध्यम से गायों की उत्पादकता बढ़ाकर भारत में पशुपालन को आर्थिक रूप से सुदृढ़ एवं दीर्घकालीन रूप से टिकाऊ बनाया जा सकता है।

सूचक शब्द: गाय की नस्लें, दुग्ध उत्पादन, प्रजनन मापदंड, पशुपालन प्रबंधन

परिचय

भारत एक कृषि प्रधान देश है, जहाँ की अधिकांश जनसंख्या प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप से कृषि और उससे संबद्ध गतिविधियों पर निर्भर करती है। इन्हीं गतिविधियों में पशुपालन का स्थान अत्यंत महत्वपूर्ण है। इन्हीं कारणों से पशुपालन को ग्रामीण अर्थव्यवस्था की रीढ़ कहा जाता है।

पशुपालन से किसानों को नियमित आय, पोषण सुरक्षा और रोजगार के अवसर प्राप्त होते हैं। गाय इस व्यवस्था का एक प्रमुख आधार है। गाय न केवल दूध उत्पादन का मुख्य स्रोत है, बल्कि गोबर के माध्यम से जैविक खाद, ईंधन तथा पर्यावरण संरक्षण में भी महत्वपूर्ण योगदान देती है। इसके अतिरिक्त भारतीय समाज में गाय का सांस्कृतिक, धार्मिक और आर्थिक महत्व अत्यंत विशेष है, जिसके कारण इसे सम्मान की दृष्टि से देखा जाता है और संरक्षित करने का भरसक प्रयास किया जाता है।

भारत के विभिन्न भागों में भौगोलिक संरचना, जलवायु की विविधता, वर्षा का स्वरूप, चारे की उपलब्धता तथा पारंपरिक प्रबंधन प्रणालियों के कारण गाय की अनेक देशी एवं विदेशी नस्लों का विकास हुआ है। उत्तर, पश्चिमी, दक्षिण और पूर्वी भारतकृसभी क्षेत्रों में स्थानीय परिस्थितियों के अनुरूप गायों की कई नस्लें पाई जाती हैं। इन नस्लों में दूध उत्पादन क्षमता, प्रजनन दक्षता, रोग प्रतिरोधकता तथा अनुकूलन क्षमता में पर्याप्त विविधता देखने को मिलती है। इसी विविधता के कारण पशुपालकों को अपनी परिस्थितियों के अनुसार उपयुक्त नस्ल के चयन का अवसर मिलता है।

नस्लों के वर्गीकरण का आधार

गाय की नस्लों को उत्पत्ति के आधार पर सामान्यतः तीन प्रमुख श्रेणियों— देशी, विदेशी तथा संकरकृमें विभाजित किया जा सकता है। देशी नस्लें सदियों से स्थानीय पर्यावरणीय परिस्थितियों के अनुरूप विकसित हुई हैं और इनमें प्राकृतिक चयन की भूमिका प्रमुख रही है। विदेशी नस्लें मुख्यतः अधिक दुग्ध उत्पादन के उद्देश्य से वहां की पर्यावरणीय परिस्थितियों के अनुरूप विकसित की गई हैं, जबकि संकर नस्लें देशी और विदेशी नस्लों के उपयोगी गुणों को एक साथ प्राप्त करने के उद्देश्य से तैयार की गई हैं। प्रत्येक श्रेणी की नस्लों में उत्पादन और प्रजनन से जुड़े मापदंड भिन्न होते हैं, जिनका पशुपालकों के लिए आर्थिक एवं व्यावहारिक महत्व होता है।

गाय की प्रमुख देशी नस्लें

भारत की देशी गाय की नस्लों में साहीवाल, गिर, रेड सिंधी, थारपारकर, बछौर, राठी, कंकरेज, हरियाणा, देवनी, ओंगोल जैसी प्रमुख नस्लें शामिल हैं। ये नस्लें सामान्यतः निम्न से लेकर मध्यम स्तर का दूध उत्पादन करती हैं, लेकिन इनकी सबसे बड़ी विशेषता यह है कि ये विकट जलवायु, कम गुणवत्ता वाले चारे और सीमित प्रबंधन में भी संतोषजनक प्रदर्शन करती हैं। देशी गायों में ऊष्मा सहनशीलता, रोग प्रतिरोधक क्षमता और दीर्घ उत्पादक जीवन जैसे गुण पाए जाते हैं। इन गायों का औसत दुग्ध उत्पादन लगभग 4 से 8 लीटर प्रतिदिन या उससे कम होता

है। हालांकि वैज्ञानिक एवं उन्नत प्रबंधन अपनाने पर कुछ पशु इससे अधिक दूध देने में भी सक्षम होते हैं।

मादा साहीवाल

नर साहीवाल

साहीवाल गाय को भारत की श्रेष्ठ दुग्ध उत्पादन करने वाली स्वदेशी नस्ल माना जाता है। यह नस्ल मुख्यतः उत्तर भारत और पाकिस्तान के क्षेत्रों में विकसित हुई है और आज हमारे देश के अनेक भागों में पाई जाती है। साहीवाल गाय का औसत दुग्ध उत्पादन 2000 से 3000 लीटर प्रति दुग्धावधि तक होता है। प्रजनन मापदंडों की दृष्टि से इसकी आयु–प्रथम ब्यांत लगभग 36 से 42 माह होती है तथा ब्यांत अंतराल सामान्यतः 13 से 15 माह के बीच पाया जाता है। इसकी गर्भधारण क्षमता अच्छी होती है और यह ऊष्मा सहनशीलता के लिए विशेष रूप से जानी जाती है, जिससे यह उष्णकटिबंधीय परिस्थितियों में भी अच्छा प्रदर्शन करती है।

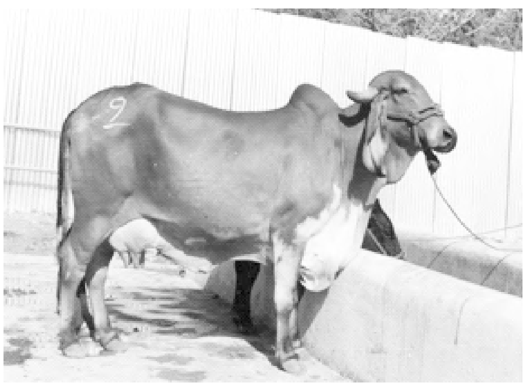

मादा गिर

नर गिर

गिर गाय गुजरात और राजस्थान के कुछ भागों में पाई जाती है और अपने विशिष्ट कूबड़, लटकते कान तथा शांत स्वभाव के लिए प्रसिद्ध है। गिर गाय का दूध औषधीय गुणों से भरपूर माना जाता है और इसकी बाजार में अच्छी मांग रहती है। इसका औसत दुग्ध उत्पादन 1800 से 2500

लीटर प्रति दुग्धावधि होता है। प्रजनन की दृष्टि से गिर गाय की आयु–प्रथम ब्यांत लगभग 40 से 45 माह होती है। यह नस्ल अपेक्षाकृत लंबी आयु की होती है और लंबे समय तक उत्पादक बनी रहती है, जिससे पशुपालकों को दीर्घकालीन लाभ प्राप्त होता है।

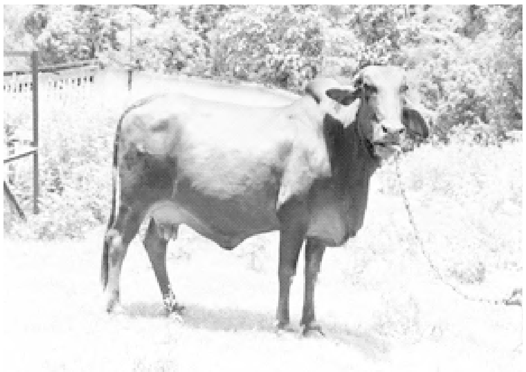

मादा रेड सिंधी

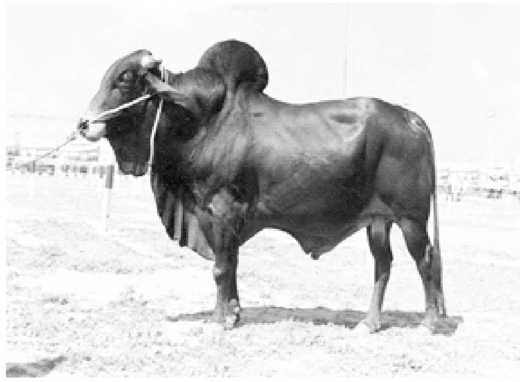

नर रेड सिंधी

रेड सिंधी नस्ल मूल रूप से सिंध क्षेत्र से संबंधित है और वर्तमान में भारत के कई भागों में सफलतापूर्वक पाली जा रही है। यह नस्ल मध्यम दुग्ध उत्पादन के साथ–साथ अच्छी प्रजनन क्षमता के लिए जानी जाती है। रेड सिंधी गाय का औसत दुग्ध उत्पादन 1500 से 2000 लीटर प्रति दुग्धावधि होता है। इसका ब्यांत अंतराल संतोषजनक रहता है और यह उष्णकटिबंधीय रोगों के प्रति अपेक्षाकृत अधिक सहनशील होती है, जिससे इसके रख–रखाव की लागत कम होती है।

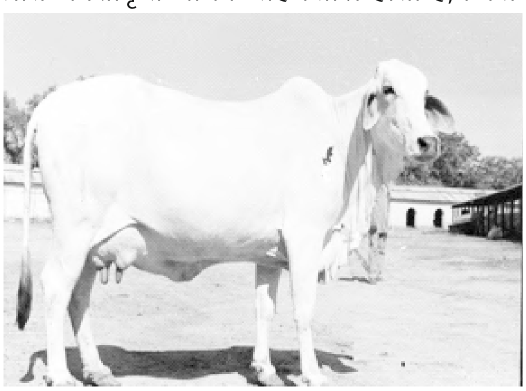

मादा थरपारकर

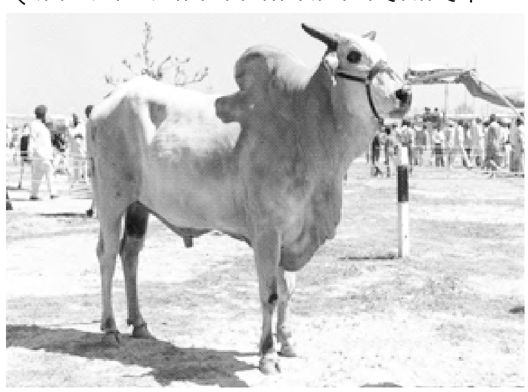

नर थरपारकर

थारपारकर और राठी नस्लें राजस्थान के शुष्क एवं अर्ध–शुष्क क्षेत्रों में विकसित हुई हैं। ये नस्लें सीमित संसाधनों और कठिन पर्यावरणीय परिस्थितियों में भी उत्पादन बनाए रखने में सक्षम होती हैं। थारपारकर गाय का औसत दुग्ध उत्पादन 1800 से 2600 लीटर तक हो सकता है। प्रजनन मापदंडों की दृष्टि से इन नस्लों में गर्भधारण दर अच्छी पाई जाती है, जिससे किसानों

को नियमित रूप से बछड़े और दूध दोनों प्राप्त होते हैं।

गाय की प्रमुख विदेशी नस्लें

विदेशी गाय की नस्लों में होल्सटीन फ्रिजियन, जर्सी, ब्राउन स्विस इत्यादि प्रमुख हैं। ये नस्लें मुख्यतः अधिक दुग्ध उत्पादन के लिए जानी जाती हैं, लेकिन इनके लिए बेहतर प्रबंधन, संतुलित आहार और नियंत्रित वातावरण की आवश्यकता होती है। विदेशी नस्लों का दुग्ध उत्पादन स्वदेशी नस्लों की तुलना में काफी अधिक होता है, परंतु इनकी रोग प्रतिरोधक क्षमता और ऊष्मा सहनशीलता अपेक्षाकृत कम होती है, जिससे उष्ण जलवायु वाले क्षेत्रों में विशेष सावधानी आवश्यक होती है।

होल्सटीन फ्रिजियन गाय

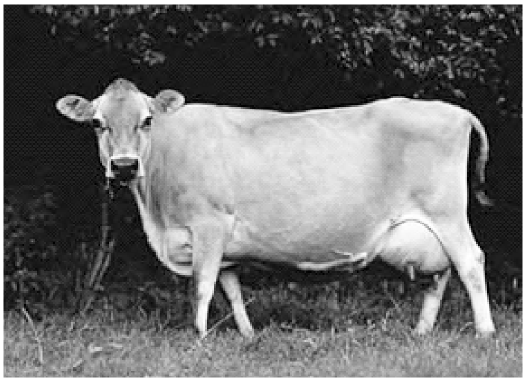

जर्सी गाय

होल्सटीन फ्रिजियन नस्ल को विश्व की सर्वाधिक दुग्ध उत्पादन करने वाली गाय माना जाता है। इसका औसत दुग्ध उत्पादन 6000 से 8000 लीटर प्रति दुग्धावधि या उससे भी अधिक हो सकता है। प्रजनन मापदंडों में इसकी आयु–प्रथम ब्यांत लगभग 30 से 36 माह होती है। हालांकि अत्यधिक उत्पादन के कारण इनमें कभी–कभी प्रजनन समस्याएँ, जैसे लंबा ब्यांत अंतराल और कम गर्भधारण दर, देखने को मिलती हैं।

जर्सी नस्ल आकार में छोटी होती है, लेकिन इसके दूध में वसा प्रतिशत अधिक पाया जाता है। इसका औसत दुग्ध उत्पादन 3500 से 5000 लीटर प्रति दुग्धावधि होता है। जर्सी गाय जल्दी परिपक्व होती है और इसकी आयु–प्रथम ब्यांत अपेक्षाकृत कम होती है। उष्ण जलवायु में यह नस्ल होल्सटीन की तुलना में बेहतर अनुकूलन दिखाती है, इसलिए भारत में इसे व्यापक रूप से अपनाया गया है।

भारत में मिलने वाली प्रमुख संकर नस्लें

संकर गाय की नस्लें स्वदेशी और विदेशी नस्लों के गुणों को संयोजित करने का एक सफल प्रयास हैं। भारत में होल्सटीन फ्रिजियन × साहीवाल (फ्रिस्वाल, करणस्विस) तथा होल्सटीन फ्रिजियन × थारपारकर (करणफ्रिस) जैसे संकर पशु व्यापक रूप से पाए जाते हैं।

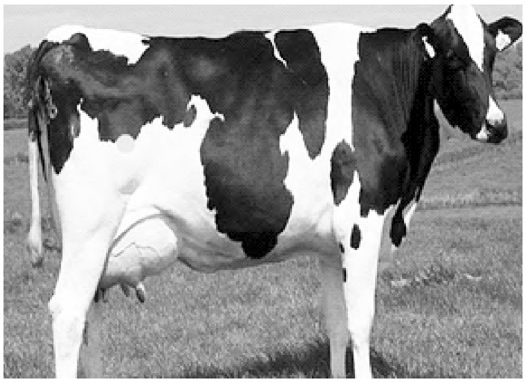

करणफ्रिस गाय

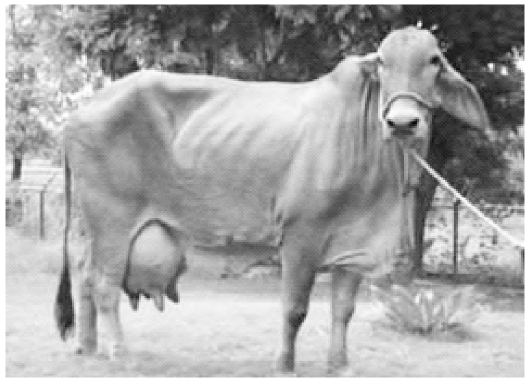

करणस्विस गाय

इन गायों में दुग्ध उत्पादन देशी नस्लों से अधिक परन्तु विदेशी नस्लों से कम होता है, लेकिन प्रजनन क्षमता और रोग प्रतिरोधकता अपेक्षाकृत संतुलित रहती है। संकर गायों का औसत दुग्ध उत्पादन 3000 से 4000 लीटर प्रति दुग्धावधि तक पाया जाता है।

उत्पादन एवं प्रजनन मापदंड

उत्पादन मापदंडों में दुग्ध उत्पादन, दुग्धावधि की लंबाई, दूध की गुणवत्ता तथा वसा प्रतिशत प्रमुख माने जाते हैं। दुग्ध उत्पादन सीधे किसान की आय से जुड़ा होता है, जबकि दूध की गुणवत्ता उपभोक्ता स्वास्थ्य और बाजार मूल्य को प्रभावित करती है। स्वदेशी गायों का दूध सामान्यतः अधिक वसा और ठोस पदार्थों से भरपूर होता है, जबकि विदेशी नस्लों का कुल दुग्ध उत्पादन अधिक पाया जाता है। प्रजनन मापदंडों में आयु–प्रथम ब्यांत, ब्यांत अंतराल, गर्भधारण दर और प्रति गर्भधारण सेवाओं की संख्या का विशेष महत्व होता है। कम आयु–प्रथम ब्यांत और छोटा ब्यांत अंतराल पशुपालन को आर्थिक दृष्टि से अधिक लाभकारी बनाते हैं। स्वदेशी नस्लों में प्रजनन स्थिरता अधिक पाई जाती है, जबकि उच्च उत्पादन वाली विदेशी नस्लों में प्रजनन प्रबंधन पर विशेष ध्यान देना आवश्यक होता है। प्रबंधन, पोषण और स्वास्थ्य सेवाएँ उत्पादन एवं प्रजनन मापदंडों को प्रत्यक्ष रूप से प्रभावित करती हैं। संतुलित आहार, स्वच्छ आवास, समय पर टीकाकरण और नियमित कृमिनाशक उपचार से किसी भी नस्ल की उत्पादकता में उल्लेखनीय सुधार किया जा सकता है। किसानों की जागरूकता तथा वैज्ञानिक पशुपालन पद्धतियों को

अपनाने से गायों का जीवनकाल और कुल उत्पादन दोनों में वृद्धि संभव है।

वर्तमान जलवायु परिवर्तन के परिप्रेक्ष्य में स्वदेशी गाय की नस्लों का महत्व और भी बढ़ गया है। ये नस्लें ऊष्मा तनाव, सूखा और विभिन्न रोगों के प्रति अधिक सहनशील होती हैं। अतः दीर्घकालीन, टिकाऊ और पर्यावरण–अनुकूल पशुपालन के लिए स्वदेशी नस्लों के संरक्षण, सुधार और संवर्धन पर विशेष ध्यान देना अत्यंत आवश्यक है।

निष्कर्ष

अंततः यह कहा जा सकता है कि विभिन्न गाय की नस्लों में उत्पादन और प्रजनन मापदंडों की विविधता उनके भौगोलिक, आनुवंशिक और प्रबंधन संबंधी कारकों का प्रतिफल है। किसी भी क्षेत्र के लिए उपयुक्त नस्ल का चयन स्थानीय परिस्थितियों, उपलब्ध संसाधनों और किसानों की आवश्यकताओं के अनुसार किया जाना चाहिए। संतुलित दृष्टिकोण अपनाते हुए स्वदेशी, विदेशी और संकर नस्लों का विवेकपूर्ण उपयोग ही भारत में पशुपालन को आर्थिक रूप से सुदृढ़, सामाजिक रूप से उपयोगी और पर्यावरण की दृष्टि से टिकाऊ बना सकता है।

बिहार के दुग्ध क्षेत्र की वर्तमान स्थिति एवं भावी विकास की दिशा

निर्मल सिंह दहिया, एवं योगेंद्र सिंह जादौन

प्रसार शिक्षा निदेशालय, बिहार पशु विज्ञान विश्वविद्यालय, पटना–14

सारांश

दुग्ध क्षेत्र बिहार की ग्रामीण अर्थव्यवस्था, पोषण सुरक्षा तथा रोजगार सृजन का एक अत्यंत महत्वपूर्ण आधार है। विगत वर्षों में राज्य में दुग्ध उत्पादन, प्रति व्यक्ति दूध उपलब्धता, सहकारी दुग्ध संरचना तथा दुग्ध प्रसंस्करण क्षमता में उल्लेखनीय वृद्धि दर्ज की गई है, जिससे यह क्षेत्र कृषि के बाद आय का सबसे विश्वसनीय स्रोत बनकर उभरा है। बिहार राज्य दुग्ध सहकारी संघ (COMFED) की सक्रिय एवं संगठित भूमिका, कृत्रिम गर्भाधान सेवाओं का विस्तार, उन्नत नस्लों का प्रसार तथा केंद्र एवं राज्य सरकार द्वारा संचालित विभिन्न योजनाओं ने दुग्ध क्षेत्र को नई गति और दिशा प्रदान की है। इन प्रयासों से किसानों को बेहतर बाजार, उचित मूल्य और तकनीकी सहायता उपलब्ध हो सकी है। इसके बावजूद, चारा एवं पोषण संकट, असमान क्षेत्रीय विकास, पशु स्वास्थ्य सेवाओं की सीमित पहुँच, तथा दूध एवं दुग्ध उत्पादों में मूल्य संवर्धन की कमी जैसी चुनौतियाँ अभी भी बनी हुई हैं। इन बाधाओं के समाधान के बिना दुग्ध क्षेत्र की पूर्ण क्षमता का दोहन संभव नहीं है। यह अध्याय बिहार के दुग्ध क्षेत्र की वर्तमान स्थिति, उसके SWOT विश्लेषण, तथा भावी विकास हेतु रणनीतियों का समग्र, तथ्यात्मक एवं नीतिगत विश्लेषण प्रस्तुत करता है, जो सतत ग्रामीण विकास की दिशा में मार्गदर्शक सिद्ध हो सकता है।

सूचक शब्दः बिहार, दुग्ध क्षेत्र, दूध उत्पादन, प्रति व्यक्ति उपलब्धता, पशुपालन, COMFED, प्रजनन, कृत्रिम गर्भाधान, फ़ीडिंग, पशु स्वास्थ्य।

परिचयः

भारत विश्व का सबसे बड़ा दुग्ध उत्पादक देश है और दुग्ध क्षेत्र राष्ट्रीय कृषि सकल घरेलू उत्पाद (Agricultural GDP) में अत्यंत महत्वपूर्ण योगदान देता है। यह क्षेत्र न केवल पोषण सुरक्षा सुनिश्चित करता है, बल्कि करोड़ों ग्रामीण परिवारों की आजीविका का भी प्रमुख आधार है। दुग्ध उत्पादन की निरंतर बढ़ती मांग, तकनीकी हस्तक्षेपों और संस्थागत समर्थन ने इसे भारतीय कृषि का सबसे गतिशील उप–क्षेत्र बना दिया है।

बिहार, जो परंपरागत रूप से एक कृषि प्रधान राज्य रहा है, अब पशुपालन, विशेषकर डेयरी क्षेत्रकृमें तीव्र गति से उभर रहा है। राज्य की 85 प्रतिशत से अधिक जनसंख्या ग्रामीण क्षेत्रों में निवास करती है, जहाँ छोटे एवं सीमांत किसान, भूमिहीन श्रमिक तथा महिलाएँ बड़े पैमाने पर पशुपालन से जुड़ी हुई हैं। डेयरी गतिविधियाँ कम भूमि, कम पूंजी निवेश और वर्षभर नियमित आय प्रदान करने के कारण जोखिम–रहित एवं टिकाऊ आजीविका का प्रभावी साधन सिद्ध हो रही हैं।

बिहार सरकार द्वारा लागू कृषि रोडमैप, विभिन्न पशुपालन एवं डेयरी विकास योजनाएँ, राष्ट्रीय गोकुल मिशन, डेयरी इंफ्रास्ट्रक्चर डेवलपमेंट फंड तथा बिहार राज्य दुग्ध सहकारी संघ के सशक्त और विस्तृत नेटवर्क ने राज्य में दुग्ध क्षेत्र को एक संगठित, व्यावसायिक और बाजारोन्मुख स्वरूप प्रदान किया है। इन पहलों के माध्यम से दुग्ध संग्रह, प्रसंस्करण, विपणन, नस्ल सुधार, पशु स्वास्थ्य सेवाओं तथा किसान प्रशिक्षण में उल्लेखनीय सुधार हुआ है, जिससे बिहार का दुग्ध क्षेत्र सतत विकास की दिशा में तेजी से अग्रसर हो रहा है।

1. दुग्ध पशु और दूध उत्पादन स्थिति

बिहार में दूध उत्पादन वर्तमान में लगभग 128.53 लाख मीट्रिक टन प्रति वर्ष है, जिसे 2028 तक 159.9 लाख मीट्रिक टन तक ले जाने का लक्ष्य है।राज्य में पारंपरिक देसी नस्लों के अलावा क्रॉसब्रीड और भैंसें प्रमुख दूध उत्पादक हैं। भारत की 20वीं पशुगणना (2019) के अनुसार, बिहार में पशुधन की उल्लेखनीय उपस्थिति दर्ज की गई है। राज्य में कुल पशुधन की संख्या लगभग 3. 31 करोड़ (33.1 मिलियन) थी, जिसमें लगभग 1.54 करोड़ (15.4 मिलियन) गोवंश (गाय एवं बैल) शामिल थे। यह स्थिति बिहार को दुग्ध उत्पादन और कृषि आधारित अर्थव्यवस्था के लिए एक महत्वपूर्ण राज्य बनाती है।

2. प्रति व्यक्ति दूध उपलब्धता

बिहार में प्रति व्यक्ति दूध उपलब्धता में सकारात्मक उछाल देखा जा रहा है। वर्ष 2023–24 में औसत 277 ग्राम / दिन से बढ़कर 285 ग्राम / दिन हो गई है, जो राष्ट्रीय औसत की ओर एक सकारात्मक संकेत है।

3. फ़ीडिंग, प्रजनन और स्वास्थ्य देखभाल

बिहार में पशु फ़ीडिंग, पोषण प्रबंधन के क्षेत्र में सरकारी और निजी प्रयासों के बावजूद फ़ीड सामग्री की कमी किसानों के लिए एक प्रमुख बाधा है। प्रजनन कार्यक्रमों में कृत्रिम गर्भाधान सेवाओं की स्थापना की गई है पिछले डेटा के अनुसार लगभग 4396 कृत्रिम गर्भाधान केंद्र हैं और लाखों कृत्रिम गर्भाधान किए गए हैं।

पशु स्वास्थ्य कार्यक्रमों में FMD, HS और अन्य रोगों के ख़िलाफ़ टीकाकरण व कीटाणुशोधन कार्य शामिल हैं, जिसका लक्ष्य पशु मृत्यु दर को कम करना और उत्पादकता बढ़ाना है।

4. दुग्ध प्रसंस्करण और सहकारी ढाँचा

बिहार राज्य दूध सहकारी संघ (COMFED)"Sudha" ब्रांड के तहत दूध और दुग्ध उत्पादों का प्रसंस्करण करता है। यह राज्य की सबसे बड़ी सहकारी संस्था है और इसके प्रसंस्करण क्षमताओं में पर्याप्त विस्तार हुआ है। COMFED के द्वारा संचालित फैक्ट्रियों और प्रसंस्करण इकाइयों की दैनिक क्षमता लाखों लीटर तक है, और विभिन्न दुग्ध उत्पाद जैसे पनीर, घी, दही, दूध पाउडर आदि बनाए जा रहे हैं। अभी सहकारी डपसा Societies की संख्या लाखों तक पहुँच चुकी है, जो राज्य में दूध संग्रह और विपणन को गति देती हैं।

5. बिहार में दुग्ध विकास हेतु सरकारी योजनाएँ एवं नीतिगत हस्तक्षेप

बिहार सरकार ने पशुपालन को कृषि के समान महत्व देते हुए कई योजनाएँ लागू की हैं।

5.1 प्रमुख राज्य एवं केंद्रीय योजनाएँ

- समग्र गव्य विकास योजना ।
- राष्ट्रीय गोकुल मिशन ।
- राष्ट्रीय पशु रोग नियंत्रण कार्यक्रम (NADCP)– FMD एवं ब्रुसेलोसिस।
- डेयरी इंफ्रास्ट्रक्चर डेवलपमेंट फंड ।
- राष्ट्रीय कृत्रिम गर्भाधान कार्यक्रम (NAIP)

इन योजनाओं के माध्यम से:

- कृत्रिम गर्भाधान कवरेज बढ़ा।
- उन्नत नस्लों का संवर्धन।
- दुग्ध प्रसंस्करण क्षमता में वृद्धि।
- पशु स्वास्थ्य ढांचे को मजबूती।

6. कृत्रिम गर्भाधान एवं प्रजनन सेवाओं की वर्तमान स्थिति

बिहार में प्रजनन सुधार दुग्ध उत्पादकता बढ़ाने का सबसे महत्वपूर्ण कारक है।

6.1 कृत्रिम गर्भाधान सेवाओं की स्थिति

- राज्य में 4000+ कृत्रिम गर्भाधान केंद्र कार्यरत।
- Multipurpose AI Technicians (MAITRIs) की भूमिका अत्यंत महत्वपूर्ण।
- क्रॉसब्रीड गायों एवं उन्नत भैंस नस्लों को बढ़ावा।

6.2 प्रमुख चुनौतियाँ

- दूरस्थ क्षेत्रों में कृत्रिम गर्भाधान सेवा की सीमित उपलब्धता।
- हीट डिटेक्शन एवं फॉलो–अप में कमी।
- गुणवत्तापूर्ण सीमन की सतत आपूर्ति की आवश्यकता।

7. SWOT विश्लेषण

7.1 Strengths (मज़बूती)

- लगातार बढ़ रही दूध उत्पादन दर और प्रति व्यक्ति उपलब्धता।
- COMFED का सुदृढ सहकारी नेटवर्क और प्रसंस्करण क्षमता।
- सरकार द्वारा डेडिकेटेड निवेश एवं योजनाएँ (Samagra Gavya Vikash Yojana and infrastructure funding)

7.2 Weaknesses (कमज़ोरियाँ)

- फ़ीड और चारा की अपर्याप्त उपलब्धता।
- कुछ ग्रामीण क्षेत्रों में पशु स्वास्थ्य सेवाओं की पहुँच सीमित।
- कृत्रिम गर्भाधान व प्रजनन सेवाओं का समान रूप से सभी क्षेत्रों में विस्तार की
- आवश्यकता।
- सीमित दुग्ध पशु उत्पादक नस्लें।
- दुग्ध संग्रह एवं विपणन संरचना का कमजोर होना।
- प्रति पशु चारा उपलब्धता कम।
- व्यावसायिक फ़ीड की लागत अधिक।
- चारा संरक्षण (सायलेज / हे) का सीमित उपयोग।

7.3 Opportunities (अवसर)

- उच्च गुणवत्ता वाले दुध उत्पादों के लिए बाहरी बाजार और निर्यात संभावनाएँ।
- value&added dairy product (जैसे पनीर, दूध पाउडर) का विस्तार।
- सरकारी कृषि रोडमैप योजनाओं से लाभ उठाना।

7.4 Threats (ख़तरे)

- निजी प्रतिस्पर्धा जैसे अन्य डेयरी ब्रांडों का प्रवेश।
- रोगों और बीमारियों का प्रबंधन चुनौतीपूर्ण हो सकता है।
- बदलती जलवायु का पशुओं पर प्रभाव।

8. आगे का रास्ता (Way Forward for Dairy Sector in Bihar)

fबिहार को दुग्ध उत्पादन में आत्मनिर्भर एवं प्रतिस्पर्धी बनाने हेतु निम्न रणनीतियाँ आवश्यक हैं:

8.1 उत्पादन वृद्धि हेतु

- उच्च उत्पादक नस्लों का विस्तार।
- संतुलित पशु आहार एवं हरा चारा उत्पादन।
- बहुवर्षीय चारा फसलों को बढ़ावा।
- सायलेज तकनीक का प्रशिक्षण।
- COMFED आधारित फ़ीड सप्लाई चेन।
- जलवायु–अनुकूल पशु प्रबंधन।

8.2 मूल्य संवर्धन

- पनीर, घी, फ्लेवर्ड मिल्क, UHT मिल्क
- महिला SHGs को डेयरी उद्यम से जोड़ना
- मूल्य संवर्धन एवं ब्रांडिंग

8.3 संस्थागत मजबूती

- COMFED का विस्तार एवं आधुनिकीकरण।
- निजी–सहकारी भागीदारी (PPP) ।
- जिला–विशिष्ट दुग्ध विकास योजना।
- डिजिटल कृत्रिम गर्भाधान एवं हेल्थ ट्रैकिंग।

8.4 मानव संसाधन विकास

- पशुपालकों का कौशल उन्नयन।
- युवाओं को डेयरी स्टार्ट–अप से जोड़ना।

निष्कर्ष :

बिहार का दुग्ध क्षेत्र वर्तमान में संभावनाओं और चुनौतियों के एक महत्वपूर्ण संगम पर खड़ा है। राज्य में दूध उत्पादन में निरंतर वृद्धि, गाँव–गाँव तक फैला सुदृढ़ दुग्ध सहकारी ढाँचा, तथा केंद्र और राज्य सरकारों का नीतिगत एवं वित्तीय समर्थन इस क्षेत्र की प्रमुख ताकतें हैं। COMFED जैसे संगठनों के माध्यम से दुग्ध संग्रह, प्रसंस्करण और विपणन की व्यवस्था ने किसानों को सुनिश्चित बाजार और उचित मूल्य प्रदान किया है, जिससे डेयरी गतिविधियाँ ग्रामीण अर्थव्यवस्था की रीढ़ बनती जा रही हैं। इसके बावजूद, दुग्ध क्षेत्र की पूर्ण क्षमता के दोहन के लिए

अभी कई चुनौतियों पर समन्वित रूप से कार्य करना आवश्यक है। चारा एवं पोषण प्रबंधन में वैज्ञानिक दृष्टिकोण अपनाना, हरे एवं संरक्षित चारे की उपलब्धता बढ़ाना तथा संतुलित आहार का प्रसार करना उत्पादन लागत घटाने और उत्पादकता बढ़ाने के लिए अनिवार्य है। इसी प्रकार, प्रजनन सेवाओं में कृत्रिम गर्भाधान की गुणवत्ता, उन्नत नस्लों का प्रसार और जनन दक्षता में सुधार, दूध उत्पादन बढ़ाने की दिशा में निर्णायक भूमिका निभा सकते हैं।

पशु स्वास्थ्य सेवाओं का सुदृढ़ीकरण, समय पर टीकाकरण, रोग नियंत्रण तथा मोबाइल और डिजिटल पशु चिकित्सा सेवाओं का विस्तार दुग्ध पशुओं की उत्पादक आयु बढ़ाने में सहायक होगा। साथ ही, दूध के मूल्य संवर्धन, जैसे दुग्ध उत्पादों का प्रसंस्करण, ब्रांडिंग और विपणन, किसानों की आय में उल्लेखनीय वृद्धि कर सकता है। यदि इन सभी पहलुओं पर समन्वित, बहु–आयामी और दीर्घकालिक प्रयास किए जाएँ, तो बिहार न केवल राष्ट्रीय दुग्ध उत्पादन औसत को पार कर सकता है, बल्कि ग्रामीण समृद्धि, रोजगार सृजन और पोषण सुरक्षा का एक सशक्त एवं अनुकरणीय मॉडल बनकर उभर सकता है।

दुधारू पशुओं की जूनोटिक बीमारियाँ प्रबंधन एवं सार्वजनिक स्वास्थ्य महत्व

अंजय एवं प्रिति सेन वर्मा

पशु लोक स्वास्थ्य एवं महामारी विज्ञान विभाग, बिहार पशु चिकित्सा महाविद्यालय, बिहार पशु विज्ञान विश्वविद्यालय, पटना–14

सारांश

दुधारू पशुओं से संबंधित जूनोटिक बीमारियाँ भारत जैसे पशुपालन–प्रधान देश में पशु स्वास्थ्य, मानव स्वास्थ्य और दुग्ध उद्योगकृतीनों के लिए गंभीर चुनौती प्रस्तुत करती हैं। ऐंथ्रक्स, ब्रूसेलोसिस, जूनोटिक ट्यूबरकुलोसिस, लेप्टोस्पायरोसिस, लिस्टेरिओसिस, क्यू फीवर तथा अन्य खाद्यजनित व संपर्कजनित रोग संक्रमित दूध, मांस, पशु स्रावों, दूषित पर्यावरण और प्रत्यक्ष संपर्क के माध्यम से मनुष्यों में फैलते हैं। ये रोग न केवल पशुओं की उत्पादकता और प्रजनन क्षमता को प्रभावित करते हैं, बल्कि किसानों की आजीविका, खाद्य सुरक्षा और सार्वजनिक स्वास्थ्य पर भी प्रतिकूल प्रभाव डालते हैं। प्रभावी टीकाकरण, जैव–सुरक्षा, स्वच्छता, सुरक्षित दुग्ध–मांस उपभोग, समय पर निदान तथा एक स्वास्थ्य दृष्टिकोण के समन्वित क्रियान्वयन से इन रोगों के जोखिम को उल्लेखनीय रूप से कम किया जा सकता है।

सूचक शब्दः जूनोटिक रोग, सार्वजनिक स्वास्थ्य, जैव–सुरक्षा, एक स्वास्थ्य

परिचय

भारत में पशुपालन ग्रामीण अर्थव्यवस्था की रीढ़ है। गाय, भैंस एवं बकरी जैसे दुधारू पशु न केवल दूध एवं दुग्ध उत्पादों का प्रमुख स्रोत हैं, बल्कि लाखों लोगों की आजीविका से भी जुड़े हुए हैं। इन पशुओं से मनुष्य में फैलने वाली बीमारियों को जूनोटिक रोग कहा जाता है। जूनोटिक रोग वे संक्रामक बीमारियाँ हैं जो पशुओं और मनुष्यों के बीच प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप से संचरित होती हैं। ये रोग मानव स्वास्थ्य के लिए गंभीर खतरा उत्पन्न करने के साथ–साथ पशुपालन एवं दुग्ध उद्योग पर भारी आर्थिक बोझ डालते हैं। वैश्विक स्तर पर यह अनुमान है कि प्रतिवर्ष एक अरब से अधिक लोग जूनोटिक रोगों से प्रभावित होते हैं और लाखों लोगों की मृत्यु होती है। वर्तमान में पहचाने गए उभरते संक्रामक रोगों में से लगभग 60 प्रतिशत जूनोटिक प्रकृति के हैं। पिछले 30 वर्षों में पहचाने गए नए मानव रोगजनकों में से लगभग 75 प्रतिशत का उद्गम पशुओं से हुआ है। जूनोटिक रोगों के निरंतर उद्भव एवं पुनः उद्भव के पीछे जलवायु परिवर्तन, तीव्र एवं

असंगठित पशुपालन प्रणालियाँ, जैव–सुरक्षा उपायों की कमी तथा मनुष्य और पशुओं के बीच बढ़ता निकट संपर्क प्रमुख कारक हैं।

दुधारू पशु –पालक और विशेष रूप से कृत्रिम गर्भाधान कार्यकर्ता उच्च जोखिम वर्ग में आते हैं। विकासशील देशों में दुधारू पशु–पालक पहले से ही कई संरचनात्मक चुनौतियों का सामना कर रहे हैं, जिनमें कम उत्पादन स्तर, कृत्रिम गर्भाधान सेवाओं तक सीमित पहुँच, दूध का कम बाजार मूल्य, तथा ऋण एवं वित्तीय संसाधनों की कमी प्रमुख हैं। जूनोटिक रोगों का प्रकोप इन समस्याओं को और गंभीर बना देता है। ऐसे प्रकोप आपूर्ति श्रृंखला को बाधित करते हैं, पशु उत्पादों की मांग को कम करते हैं तथा खाद्य सुरक्षा के लिए भी खतरा उत्पन्न करते हैं। इसके अतिरिक्त, सीमित स्वास्थ्य सुविधाएँ, अपर्याप्त शिक्षा एवं रोगों के प्रति कम जागरूकता स्थिति को और जटिल बना देती है।

दुधारू पशुओं की प्रमुख जूनोटिक बीमारियाँ

दुधारू पशुओं में पाई जाने वाली जूनोटिक बीमारियाँ पशु स्वास्थ्य, मानव स्वास्थ्य तथा दुग्ध उद्योग– तीनों के लिए गंभीर चिंता का विषय हैं। ये रोग प्रत्यक्ष संपर्क, संक्रमित दूध एवं दुग्ध उत्पादों के सेवन, श्वसन मार्ग, या गर्भपात एवं प्रसव के दौरान निकलने वाले स्रावों के माध्यम से मनुष्यों में फैल सकते हैं। डेयरी पशुपालन में कार्यरत पशुपालक, कृत्रिम गर्भाधान कार्यकर्ता, दुहाई कर्मी एवं पशु चिकित्सक इन रोगों के प्रति विशेष रूप से संवेदनशील होते हैं। नीचे दुग्ध पशुओं में पाई जाने वाली प्रमुख जूनोटिक बीमारियों का संक्षिप्त विवरण प्रस्तुत किया गया है, जो रोग की प्रकृति, संचरण एवं उसके मानव स्वास्थ्य पर प्रभाव को समझने में सहायक होगा।

ऐंथ्रक्स

ऐंथ्रक्स दुधारू पशुओं की एक अत्यंत गंभीर जूनोटिक बीमारी है, जो बेसिलस ऐंथ्रेसिस नामक जीवाणु के कारण होती है। यह जीवाणु ऑक्सीजन की उपस्थिति में अत्यधिक प्रतिरोधी स्पोर बनाता है, जो मिट्टी में लगभग 40–50 वर्षों तक तथा संक्रमित पशुओं की हड्डियों में 200–250 वर्षों तक जीवित रह सकता है। दुधारू पशुओं में यह रोग विशेष रूप से गाय एवं भैंस को प्रभावित करता है और ग्रामीण डेयरी प्रणाली में अचानक मृत्यु एवं आर्थिक क्षति का प्रमुख कारण बन सकता है। पशुओं में संक्रमण मुख्यतः दूषित दाना, चारा, भूसा एवं पानी के सेवन से होता है, विशेषकर जब ये स्रोत संक्रमित पशुओं के शव, हड्डी या मांस से बने उत्पादों के संपर्क में आ जाएँ।

दुधारू पशुओं में ऐंथ्रक्स का रोग–प्रसार तीव्र एवं घातक होता है। संक्रमित पशुओं में

अचानक तेज़ बुखार, साँस लेने में कठिनाई, पूरे शरीर में सूजन या जलभराव, बेचैनी, भूख में कमी तथा दूध में रक्त की उपस्थिति जैसे लक्षण दिखाई देते हैं। अधिकांश मामलों में रोग की शुरुआत के 2–3 दिनों के भीतर पशु की मृत्यु हो जाती है। मृत्यु के समय नाक, मुँह, मलद्वार अथवा योनिद्वार से गहरे लाल रंग का थक्का न जमने वाला रक्त निकलना ऐंथ्रक्स की विशिष्ट पहचान मानी जाती है।

मानव स्वास्थ्य की दृष्टि से यह रोग अत्यंत महत्वपूर्ण है, क्योंकि दुधारू पशुओं से मनुष्यों में संक्रमण प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष संपर्क के माध्यम से हो सकता है। संक्रमित पशुओं के शव, रक्त, चमड़ा, ऊन या अन्य उत्पादों के संपर्क में आने, कच्चे या अधपके मांस के सेवन तथा स्पोरयुक्त धूल के श्वसन के माध्यम से यह रोग मनुष्यों में फैल सकता है। मनुष्यों में ऐंथ्रक्स के प्रमुख लक्षणों में तेज़ बुखार, हाथों, पैरों या चेहरे पर काले रंग का फोड़ा या फेफड़ों का संक्रमण, साँस लेने में कठिनाई, भूख की कमी, पेट दर्द तथा पानी या रक्त मिश्रित दस्त शामिल हैं।

दुधारू पशुओं में ऐंथ्रक्स जैसी गंभीर ज़ूनोटिक बीमारी की रोकथाम के लिए प्रभावी टीकाकरण और कड़े जैव–सुरक्षा उपाय अत्यंत आवश्यक हैं। पशुधन स्तर पर संवेदनशील क्षेत्रों में स्टर्न टीके का नियमित उपयोग रोग नियंत्रण की एक प्रमुख रणनीति मानी जाती है। ऐंथ्रक्स से मृत पशुओं के शव से चमड़ा निकालना या शव परीक्षण करना सख्त रूप से निषिद्ध होना चाहिए, क्योंकि इससे पर्यावरण में जीवाणु के स्पोर फैलने का अत्यधिक खतरा रहता है। मृत पशु के शव, उससे जुड़े सभी अवशेषों और दूषित गोबर को या तो पूरी तरह जलाना चाहिए या कम से कम छह फीट गहराई में दफन कर उसके ऊपर कली चूना डालकर 40 प्रतिशत फॉर्मलीन का छिड़काव करना चाहिए, ताकि जीवाणु के स्पोर निष्क्रिय हो सकें। इसके अतिरिक्त, जिस स्थान पर शव पड़ा हो, उस पूरी भूमि तथा पशु गृह को 3 प्रतिशत परएसीटिक एसिड या 3–5 प्रतिशत फॉर्मलडीहाइड से अच्छी तरह कीटाणुरहित करना आवश्यक है, जिससे संक्रमण का आगे प्रसार रोका जा सके।

मानव स्वास्थ्य की दृष्टि से, विशेषकर दुधारू पशुपालन और उससे जुड़े व्यवसायों में कार्यरत व्यक्तियों के लिए व्यक्तिगत स्वच्छता अत्यंत महत्वपूर्ण है। चमड़ा एवं ऊन उद्योग में कार्य करने वाले लोगों को रबर के दस्ताने और मुँह पर मास्क जैसे व्यक्तिगत सुरक्षा उपकरणों का नियमित उपयोग करना चाहिए, ताकि स्पोर के त्वचा या श्वसन मार्ग से शरीर में प्रवेश को रोका जा सके। इसके साथ ही यह सुनिश्चित करना आवश्यक है कि बीमार या संदिग्ध रूप से संक्रमित दुधारू पशुओं का दूध या मांस किसी भी परिस्थिति में मानव उपभोग में न लाया जाए। इन समन्वित उपायों के माध्यम से पशु और मानव दोनों में ऐंथ्रक्स के जोखिम को प्रभावी रूप से कम

किया जा सकता है।

ब्रूसेलोसिस

ब्रूसेलोसिस दुधारू पशुओं, विशेषकर गाय, भैंस एवं बकरी में पाया जाने वाला एक महत्वपूर्ण जीवाणुजनित ज़ूनोटिक रोग है, जो पशुओं से मनुष्यों में संचरित हो सकता है। यह रोग दुग्ध उत्पादन प्रणाली के लिए गंभीर स्वास्थ्य एवं आर्थिक चुनौती प्रस्तुत करता है, क्योंकि इसका सीधा प्रभाव पशुओं की प्रजनन क्षमता, दूध उत्पादन तथा पशुपालकों की आजीविका पर पड़ता है। दुग्धारू पशुओं के निकट कार्य करने वाले किसान, पशुपालक, कृत्रिम गर्भाधान कार्यकर्ता, दुहाई कर्मी एवं पशु चिकित्सक इस रोग के प्रति विशेष रूप से संवेदनशील माने जाते हैं।

दुधारू पशुओं में ब्रुसलोसिस मुख्यतः ब्रूसेल्ला जीवाणु के कारण होता है। यह जीवाणु संक्रमित गर्भपात, प्लेसेंटा एवं प्रसव के समय निकलने वाले स्रावों में बड़ी मात्रा में पाया जाता है और पर्यावरण में लंबे समय तक जीवित रह सकता है। संक्रमण दूषित चारा, पानी, उपकरणों, संक्रमित दूध, वीर्य अथवा त्वचा पर मौजूद घावों के माध्यम से एक पशु से दूसरे पशु में फैल सकता है। कृत्रिम गर्भाधान के दौरान यदि संक्रमित वीर्य या अस्वच्छ उपकरणों का उपयोग किया जाए, तो रोग के प्रसार की संभावना और अधिक बढ़ जाती है।

दुधारू पशुओं में ब्रूसेलोसिस का प्रमुख लक्षण गर्भपात है, जो प्रायः गर्भावस्था की अंतिम तिमाही में होता है। इसके अतिरिक्त कमजोर बछड़ों का जन्म, प्लेसेंटा का रुकना, बार–बार गर्भधारण में असफलता, बांझपन, जोड़ों में सूजन तथा दूध उत्पादन में उल्लेखनीय गिरावट देखी जाती है। ये सभी लक्षण उत्पादकता को गंभीर रूप से प्रभावित करते हैं और किसानों को प्रत्यक्ष आर्थिक नुकसान पहुंचाते हैं।

यह रोग दुधारू पशुओं से मनुष्यों में भी फैल सकता है, विशेषकर तब जब संक्रमित कच्चे दूध का सेवन किया जाए या गर्भपात सामग्री, प्लेसेंटा अथवा अन्य स्रावों के सीधे संपर्क में आया जाए। मनुष्यों में ब्रूसेलोसिस आमतौर पर बार–बार आने वाले बुखार, कमजोरी, सिरदर्द, मांसपेशियों एवं जोड़ों के दर्द तथा अत्यधिक पसीने के रूप में प्रकट होता है। यदि समय पर उपचार न किया जाए, तो यह रोग दीर्घकालिक रूप धारण कर हृदय, यकृत, गुर्दे एवं तंत्रिका तंत्र को भी प्रभावित कर सकता है।

दुधारू पशुओं में ब्रूसेलोसिस की रोकथाम एवं नियंत्रण के लिए समन्वित प्रबंधन रणनीति आवश्यक है। इसके अंतर्गत 4–8 माह की मादा बछियों का एस19 टीका से नियमित टीकाकरण, सभी दुधारू पशुओं का समय–समय पर परीक्षण, संक्रमित पशुओं का पृथक्करण तथा गर्भवती

पशुओं की विशेष निगरानी अत्यंत आवश्यक है। इसके साथ ही, फार्म स्तर पर स्वच्छता बनाए रखना, प्रसव एवं गर्भपात सामग्री का सुरक्षित निस्तारण करना तथा केवल प्रमाणित और सुरक्षित वीर्य का उपयोग करना रोग नियंत्रण में महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है।

प्रभावी टीकाकरण, जैव–सुरक्षा उपायों के पालन, तथा पशुपालकों और कृत्रिम गर्भाधान कार्यकर्ताओं में जागरूकता बढ़ाकर इस रोग के प्रसार को प्रभावी रूप से नियंत्रित किया जा सकता है।

ज़ूनोटिक ट्यूबरकुलोसिस (क्षयरोग)

ज़ूनोटिक ट्यूबरकुलोसिस एक जीवाणुजनित संक्रामक रोग है, जो मुख्यतः माइकोबैक्टीरियम बोविस के कारण होता है, जो माइकोबैक्टीरियम ट्यूबरकुलोसिस कॉम्प्लेक्स का सदस्य है। यह रोग मुख्यतः गाय और भैंसों में पाया जाता है, किंतु संक्रमित पशुओं से मनुष्यों में भी फैल सकता है। इस रोग की एक प्रमुख विशेषता इसका धीमा प्रसार और लंबे समय तक बिना स्पष्ट लक्षणों के बना रहना है, जिसके कारण यह अक्सर समय पर पहचाना नहीं जा पाता। संक्रमण चक्र सामान्यतः संक्रमित पशुओं से आरंभ होता है और दूध, मांस, श्वसन स्राव, मल–मूत्र तथा प्रत्यक्ष संपर्क के माध्यम से मनुष्यों तक पहुँचता है। संक्रमित पशु और मनुष्य दोनों ही अपने स्रावों और अपशिष्ट पदार्थों के माध्यम से पर्यावरण को दूषित करते हैं, जहाँ यह जीवाणु मिट्टी, पानी और पशु आश्रयों में लंबे समय तक जीवित रह सकता है। इस प्रकार पर्यावरण संक्रमण का एक स्थायी स्रोत बन जाता है और रोग का चक्र निरंतर चलता रहता है।

पशुओं में ज़ूनोटिक ट्यूबरकुलोसिस का संक्रमण प्रायः एक पशु से दूसरे पशु में सीधे संपर्क, वायुजनित मार्ग, दूषित चारा–पानी, संक्रमित दूध के सेवन तथा दूषित वातावरण और उपकरणों के माध्यम से फैलता है। कई संक्रमित पशु देखने में स्वस्थ प्रतीत होते हैं, किंतु वे लंबे समय तक संक्रमण फैलाने का स्रोत बने रहते हैं। बछड़ों में संक्रमित गाय या भैंस का दूध पीने से संक्रमण का खतरा विशेष रूप से अधिक होता है।

मनुष्यों में यह रोग मुख्यतः कच्चे या बिना पाश्चराइज दूध एवं दुग्ध उत्पादों के सेवन, अधपके संक्रमित मांस, संक्रमित पशुओं के निकट संपर्क, वायुजनित मार्ग तथा दूषित पर्यावरण के संपर्क से फैलता है। पशुपालक, डेयरी कर्मचारी, पशु चिकित्सक और ग्रामीण समुदाय के लोग इस संक्रमण के उच्च्च जोखिम समूह में आते हैं।

ज़ूनोटिक ट्यूबरकुलोसिस एक दीर्घकालिक रोग है, जिसके लक्षण पशुओं और मनुष्यों दोनों में धीरे–धीरे विकसित होते हैं। पशुओं में वजन कम होना, भूख में कमी, सुस्ती, सांस लेने में

कठिनाई, लिम्फ नोड्स की सूजन और दूध उत्पादन में गिरावट प्रमुख लक्षण हैं। मनुष्यों में लंबे समय तक रहने वाली खाँसी, बुखार, रात में पसीना, वजन में कमी, थकान और कुछ मामलों में लिम्फ नोड्स की सूजन देखी जाती है, जिससे इसे सामान्य टीबी से अलग पहचानना कठिन हो जाता है।

रोग की समय पर पहचान नियंत्रण की कुंजी मानी जाती है। पारंपरिक रूप से ट्यूबरकुलिन स्किन टेस्ट पशुओं और मनुष्यों दोनों में व्यापक रूप से उपयोग किया जाता रहा है। ज़ूनोटिक ट्यूबरकुलोसिस के संदर्भ में यह व्यापक रूप से स्वीकार किया गया है कि रोकथाम उपचार से अधिक प्रभावी है। मानव स्तर पर दूध का उबालकर या पाश्चराइज कर सेवन, मांस को अच्छी तरह पकाना और व्यक्तिगत स्वच्छता बनाए रखना आवश्यक है, जबकि पशुधन स्तर पर जैव–सुरक्षा उपाय, नियमित परीक्षण, क्वारंटीन व्यवस्था और संक्रमित पशुओं का पृथक्करण अत्यंत महत्वपूर्ण है। एक स्वास्थ्य दृष्टिकोण के अंतर्गत मानव, पशु और पर्यावरण स्वास्थ्य के समन्वित प्रयासों को ज़ूनोटिक टीबी नियंत्रण की सबसे प्रभावी रणनीति माना गया है।

लेप्टोस्पायरोसिस

लेप्टोस्पाइरोसिस एक महत्वपूर्ण जीवाणुजनित ज़ूनोटिक रोग है, जो मुख्यतः लेप्टोस्पाइरा वंश के विभिन्न रोगजनक प्रजातियों के संक्रमण के कारण गाय और भैंस जैसे दुधारू पशुओं में उत्पन्न होता है और मानव स्वास्थ्य पर भी गंभीर प्रभाव डालता है। इस रोग के पारिस्थितिक चक्र में चूहे और अन्य कृंतक अत्यंत महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं, क्योंकि ये जीवाणु इनके मूत्र के माध्यम से पर्यावरण में उत्सर्जित होते हैं। चूहों के मूत्र से दूषित मिट्टी, पानी, पशु आश्रय और कार्यस्थलों में लेप्टोस्पाइरा जीवाणु कई सप्ताह तक जीवित रह सकते हैं, जिससे डेयरी फार्मों में संक्रमण का स्थायी स्रोत बना रहता है। दुधारू पशु जब ऐसे दूषित पानी या चारे के संपर्क में आते हैं, अथवा त्वचा की छोटी खरोंचों और श्लेष्म झिल्लियों के माध्यम से इन जीवाणुओं को ग्रहण करते हैं, तो उनमें संक्रमण स्थापित हो जाता है।

दुधारू पशुओं में लेप्टोस्पाइरोसिस का प्रभाव विशेष रूप से प्रजनन और दुग्ध उत्पादन पर पड़ता है। संक्रमित गाय और भैंसों में अचानक बुखार, कमजोरी, भूख में कमी तथा दूध उत्पादन में स्पष्ट गिरावट देखी जाती है। कई मामलों में दूध का रंग पीला या लाल हो सकता है, जिसे थनैला जैसे लक्षणों के साथ भ्रमित किया जा सकता है। रोग के बढ़ने पर पीलिया, गर्भपात, जेर का न गिरना, मृत या अत्यंत कमजोर बछड़ों का जन्म तथा दुग्ध उत्पादन में दीर्घकालिक कमी देखी जाती है, जिससे किसानों को भारी आर्थिक क्षति होती है।

मनुष्यों में यह रोग प्रायः संक्रमित दुधारू पशुओं के मूत्र, जननांग स्राव, गर्भपातित भ्रूण या दूषित पानी और मिट्टी के संपर्क में आने से फैलता है। डेयरी कर्मी, पशुपालक, गोशाला कर्मचारी और खेतों में काम करने वाले व्यक्ति विशेष जोखिम समूह में आते हैं। मानव संक्रमण में प्रारंभिक लक्षण प्रायः फ्लू जैसे होते हैं, जिनमें तेज बुखार, कंपकंपी, सिरदर्द और मांसपेशियों में दर्द शामिल है। रोग की गंभीर अवस्था में आँखों का लाल या सूज जाना, पीलिया, रक्ताल्पता, मानसिक अवसाद तथा गुर्दे या यकृत की कार्यक्षमता में कमी देखी जा सकती है और समय पर उपचार न होने पर मृत्यु का खतरा भी रहता है।

लेप्टोस्पाइरोसिस की रोकथाम दुधारू पशुपालन प्रणाली में समुचित जैव सुरक्षा उपायों पर निर्भर करती है। फार्म स्तर पर चूहों और कृंतकों का प्रभावी नियंत्रण, पशुगृह, जल स्रोतों और चारा भंडारण स्थलों को उनके प्रवेश से सुरक्षित रखना तथा पानी और चारे को ढककर रखना अत्यंत आवश्यक है। दूषित जल स्रोतों, नालों या जलभराव वाले क्षेत्रों में कार्य करते समय गमबूट और सुरक्षात्मक कपड़ों का उपयोग किया जाना चाहिए तथा गंदे तालाबों में स्नान से बचना चाहिए। संक्रमित पशुओं के जननांग स्राव, जेर और गर्भपातित भ्रूण को रबर के दस्ताने पहनकर संभालना और सुरक्षित रूप से गहराई में दफनाना आवश्यक है। मानव स्वास्थ्य की दृष्टि से केवल उबला या पाश्चराइज्ड दूध का सेवन, पूरी तरह पके मांस का उपयोग, व्यक्तिगत स्वच्छता का पालन तथा पशुपालकों और डेयरी कर्मियों का समय समय पर स्वास्थ्य परीक्षण और रोगों के प्रति जागरूकता लेप्टोस्पाइरोसिस नियंत्रण की आधारशिला मानी जाती है।

लिस्टेरिओसिस

लिस्टेरिओसिस दुधारू पशुओं से जुड़ा एक महत्वपूर्ण जूनोटिक रोग है, जो लिस्टेरिया वंश के जीवाणुओं, विशेष रूप से लिस्टेरिया मोनोसाइटोजेन्स, के संक्रमण के कारण होता है। यह जीवाणु मुख्यतः पर्यावरण में व्यापक रूप से पाए जाते हैं और मिट्टी, पानी, गोबर तथा पशु आहार में लंबे समय तक जीवित रह सकते हैं। दुधारू पशुओं में लिस्टेरिओसिस का संक्रमण प्रायः दूषित या अवैज्ञानिक ढंग से तैयार किए गए साइलेज, सड़े–गले चारे, दूषित पानी अथवा अन्य संक्रमित खाद्य पदार्थों के सेवन से होता है। ठंडे और नम वातावरण में यह जीवाणु तेजी से पनपता है, जिसके कारण साइलेज आधारित आहार प्रणाली वाले डेयरी फार्मों में इस रोग का जोखिम अधिक देखा जाता है।

संक्रमित दुधारू पशुओं में लिस्टेरिओसिस के नैदानिक यह लक्षण मुख्यतः तंत्रिका तंत्र, प्रजनन तंत्र और थन को प्रभावित करते हैं। रोगग्रस्त पशुओं में मस्तिष्क ज्वर, सिर का एक ओर

झुक जाना, गोल–गोल चक्कर काटना, संतुलन खोना, अत्यधिक लार गिरना तथा भोजन ग्रहण करने में कठिनाई जैसे लक्षण दिखाई दे सकते हैं। कई मामलों में थनैला विकसित हो जाता है, जिससे दूध उत्पादन में कमी आती है और दूध की गुणवत्ता प्रभावित होती है। गर्भवती दुधारू पशुओं में यह रोग गर्भपात, मृत या कमजोर बछड़ों के जन्म का कारण बन सकता है, जिससे पशुपालकों को गंभीर आर्थिक नुकसान उठाना पड़ता है।

मनुष्यों में लिस्टेरिओसिस मुख्यतः एक खाद्यजनित ज़ूनोटिक रोग के रूप में देखा जाता है और इसका सीधा संबंध डेयरी पशुओं एवं उनके उत्पादों से होता है। संक्रमित दुधारू पशुओं का कच्चा या बिना पाश्चराइज किया हुआ दूध, उससे बने दुग्ध उत्पाद, अथवा संक्रमित पशुओं से जुड़े कच्चे खाद्य पदार्थों के सेवन से यह संक्रमण मनुष्यों में फैल सकता है। इसके अतिरिक्त, संक्रमित पशुओं के गर्भपातित भ्रूण, जेर या नवजात बछड़ों के जनन संबंधी स्राव को बिना सुरक्षा उपायों के छूने से भी मनुष्यों में संक्रमण का खतरा बना रहता है। मनुष्यों में इस रोग के लक्षणों में तेज बुखार, सिरदर्द, उल्टी, गर्दन में अकड़न, मस्तिष्क में सूजन, अवसाद, कमजोरी, निमोनिया तथा आँखों में सूजन शामिल हैं। गर्भवती महिलाओं में लिस्टेरिओसिस विशेष रूप से खतरनाक माना जाता है, क्योंकि इससे गर्भपात, मृत शिशु का जन्म या नवजात में गंभीर संक्रमण हो सकता है।

लिस्टेरिओसिस की रोकथाम के लिए दुधारू पशुपालन प्रणाली में प्रभावी जैव–सुरक्षा और खाद्य सुरक्षा उपायों को अपनाना अत्यंत आवश्यक है। साइलेज को वैज्ञानिक विधि से तैयार करना, उसकी गुणवत्ता की नियमित निगरानी करना और सड़े या फफूंदयुक्त चारे के उपयोग से बचना इस रोग की रोकथाम की आधारशिला है। गर्भपातित भ्रूण, जेर अथवा अन्य संक्रमित पदार्थों को हमेशा रबर के दस्ताने पहनकर संभालना और उन्हें सुरक्षित रूप से गहराई में दफनाना या नष्ट करना चाहिए। मानव स्तर पर कच्चे दूध के सेवन से बचना, केवल पाश्चराइज्ड या उबला हुआ दूध एवं दुग्ध उत्पादों का उपयोग करना तथा भोजन को पूरी तरह पकाकर ही ग्रहण करना आवश्यक है। इन उपायों के साथ–साथ पशुपालकों और डेयरी कर्मियों में जागरूकता बढ़ाकर लिस्टेरिओसिस जैसे ज़ूनोटिक रोगों से पशु और मानव स्वास्थ्य दोनों की प्रभावी सुरक्षा सुनिश्चित की जा सकती है।

क्यू फीवर एवं अन्य रोग

क्यू फीवर दुधारू पशुओं से संबंधित एक महत्वपूर्ण लेकिन प्रायः उपेक्षित ज़ूनोटिक रोग है, जो कोक्सिएला बर्नेट्टी नामक जीवाणु (रिकेट्सिया समूह से संबंधित) के संक्रमण के कारण होता है। यह जीवाणु अत्यंत संक्रामक होता है और पर्यावरणीय परिस्थितियों के प्रति अत्यधिक

सहनशील होने के कारण लंबे समय तक जीवित रह सकता है। संक्रमित दुधारू पशुओं के मूत्र, गोबर, दूध, लार तथा विशेष रूप से प्रसव और गर्भपात के समय निकलने वाले स्रावों में यह जीवाणु बड़ी मात्रा में पाया जाता है। इन स्रावों के माध्यम से न केवल बछड़े संक्रमित हो सकते हैं, बल्कि पशुपालकों और डेयरी कार्य से जुड़े मनुष्यों में भी संक्रमण का गंभीर खतरा बना रहता है।

दुधारू पशुओं में क्यू फीवर का संक्रमण अक्सर बिना स्पष्ट लक्षणों के भी बना रह सकता है, जिससे यह रोग फार्म स्तर पर चुपचाप फैलता रहता है। फिर भी कई मामलों में यह रोग प्रजनन संबंधी समस्याओं के रूप में प्रकट होता है। संक्रमित गायों और भैंसों में गर्भपात, समय से पहले बछड़े का जन्म, कम वजन वाले बछड़े का पैदा होना तथा थनैला जैसे लक्षण देखे जाते हैं। इस रोग की एक महत्वपूर्ण विशेषता यह है कि संक्रमित दुग्धारू पशुओं के दूध में कोक्सिएला बर्नेट्टी का लंबे समय तक निष्कासन हो सकता है, जिससे कच्चे या बिना पाश्चराइज किए गए दूध के माध्यम से मानव संक्रमण का जोखिम अत्यधिक बढ़ जाता है।

मनुष्यों में क्यू फीवर मुख्यतः दुधारू पशुओं या उनके उत्पादों से जुड़े संपर्क के कारण फैलता है। संक्रमित पशुओं का कच्चा या अनपास्चुरीकृत दूध पीने, संक्रमित पशु स्रावों से दूषित धूल को सांस के माध्यम से ग्रहण करने तथा पशुओं के प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष संपर्क में आने से यह संक्रमण फैल सकता है। मानव क्यू फीवर के लक्षण अक्सर इन्फ्लुएंजा जैसे होते हैं, जिनमें तीव्र बुखार, तेज सिरदर्द, प्रकाश के प्रति संवेदनशीलता, अत्यधिक थकान और मांसपेशियों में दर्द शामिल हैं। कुछ मामलों में यह रोग गंभीर रूप ले सकता है और मस्तिष्क, गुर्दे या हृदय से संबंधित जटिलताएँ उत्पन्न कर सकता है, जो समय पर उपचार न होने पर मृत्यु का कारण भी बन सकती हैं।

क्यू फीवर की रोकथाम के लिए दुधारू पशुपालन में सख्त जैव–सुरक्षा और स्वच्छता उपायों को अपनाना अत्यंत आवश्यक है। गर्भपातित भ्रूण, जेर और प्रसव से संबंधित अन्य स्रावों को रबर के दस्ताने पहनकर सावधानीपूर्वक संभालना और उनका सुरक्षित रूप से निरस्तीकरण करना चाहिए। पशु आश्रयों की नियमित सफाई और कीटाणुशोधन, विशेष रूप से लायसोल (1:100) या सोडियम हाइपोक्लोराइट जैसे प्रभावी कीटाणुनाशकों का उपयोग, संक्रमण के प्रसार को नियंत्रित करने में सहायक होता है। दुधारू पशुओं की समय–समय पर जांच, केवल पाश्चराइज्ड या उबले दूध का उपयोग तथा डेयरी कार्य से जुड़े व्यक्तियों का नियमित स्वास्थ्य परीक्षण क्यू फीवर की रोकथाम की महत्वपूर्ण रणनीतियाँ हैं।

क्यू फीवर के अतिरिक्त, दुधारू पशुओं से जुड़ी कई अन्य जूनोटिक बीमारियाँ भी मानव

स्वास्थ्य के लिए जोखिम उत्पन्न कर सकती हैं, जिनमें कैंपिलोबैक्टेरियोसिस, ई. कोलाई संक्रमण, साल्मोनेलोसिस, स्टेफायलोकोकोसिस, फीता कृमि संक्रमण तथा हाइडेटिड सिस्ट प्रमुख हैं। उपर्युक्त वर्णित जैव–सुरक्षा, स्वच्छता, सुरक्षित दूध एवं खाद्य पदार्थों के उपयोग और पशु–मानव संपर्क के दौरान सावधानियों को अपनाकर इन रोगों के संक्रमण के जोखिम को भी प्रभावी रूप से कम किया जा सकता है।

निष्कर्ष

दुग्ध पशुओं की ज़ूनोटिक बीमारियाँ बहुआयामी स्वास्थ्य और आर्थिक संकट उत्पन्न करती हैं, जिनका प्रभाव पशु, मानव और समाजकृतीनों स्तरों पर पड़ता है। इन रोगों की प्रभावी रोकथाम के लिए फार्म–स्तरीय जैव–सुरक्षा, नियमित टीकाकरण और परीक्षण, संक्रमित सामग्री का सुरक्षित निस्तारण, कृंतक नियंत्रण, तथा केवल उबले/पाश्चराइज्ड दूध और पूर्णतः पके मांस का उपयोग अनिवार्य है। साथ ही पशुपालकों, डेयरी कर्मियों, कृत्रिम गर्भाधान कार्यकर्ताओं और पशु चिकित्सकों में जागरूकता व व्यक्तिगत सुरक्षा उपायों का पालन अत्यंत आवश्यक है। मानव, पशु और पर्यावरण स्वास्थ्य के समन्वित एक स्वास्थ्य दृष्टिकोण को अपनाकर ही दुग्ध पशुओं से जुड़ी ज़ूनोटिक बीमारियों का दीर्घकालिक नियंत्रण और सार्वजनिक स्वास्थ्य की प्रभावी सुरक्षा सुनिश्चित की जा सकती है।

बुनियादी पशु स्वास्थ्य देखभाल, प्राथमिक उपचार और आपातकालीन प्रबंधन

ज्ञान देव सिंह

बिहार पशु चिकित्सा महाविद्यालय, बिहार पशु विज्ञान विश्वविद्यालय, पटना

पशु स्वास्थ्य देखभाल आधुनिक पशुपालन और पालतू पशु प्रबंधन का एक अनिवार्य हिस्सा है। स्वस्थ पशु न केवल बेहतर उत्पादन देते हैं, बल्कि मनुष्यों के लिए भी सुरक्षित होते हैं। बुनियादी पशु स्वास्थ्य देखभाल का अर्थ केवल बीमारी होने पर उपचार करना नहीं है, बल्कि बीमारी से बचाव, सही देखभाल और समय पर हस्तक्षेप भी है। इसका उद्देश्य पशुओं के शारीरिक, मानसिक और व्यवहारिक कल्याण को बनाए रखना है। जब पशुओं को उचित पोषण, स्वच्छ वातावरण और नियमित स्वास्थ्य देखभाल मिलती है, तो वे अधिक सक्रिय, उत्पादक और दीर्घायु होते हैं।

स्वस्थ पशु की पहचान

स्वस्थ पशु की पहचान उसके व्यवहार और शारीरिक लक्षणों से की जा सकती है। एक स्वस्थ पशु सतर्क रहता है, उसकी आंखें चमकदार होती हैं, बाल साफ और चमकदार होते हैं, भूख सामान्य रहती है और वह आसानी से चलता–फिरता है। इसके विपरीत, बीमार पशु सुस्त दिखता है, कम खाता–पीता है, अलग–थलग रहता है और कभी–कभी दर्द या असुविधा के संकेत देता है। इसलिए पशुपालक और पशु चिकित्सक के लिए यह जरूरी है कि वे पशुओं के सामान्य व्यवहार को अच्छी तरह समझें ताकि बीमारी को जल्दी पहचान सकें।

पशु पोषण

बुनियादी पशु स्वास्थ्य देखभाल का पहला और सबसे महत्वपूर्ण आधार उचित पोषण है। प्रत्येक प्रजाति की अपनी पोषण आवश्यकताएँ होती हैं। गाय–भैंस को संतुलित चारा, हरा चारा, भूसा और खनिज मिश्रण की आवश्यकता होती है, जबकि कुत्तों और बिल्लियों को उनके उम्र और वजन के अनुसार संतुलित आहार चाहिए। साफ और ताजा पानी हमेशा उपलब्ध होना चाहिए क्योंकि पानी की कमी से निर्जलीकरण, कमजोरी और कई स्वास्थ्य समस्याएँ हो सकती हैं। आहार में अचानक बदलाव से पाचन संबंधी समस्याएँ हो सकती हैं, इसलिए किसी भी नए आहार को धीरे–धीरे शामिल करना चाहिए।

आवास

स्वच्छ आवास पशु स्वास्थ्य का दूसरा महत्वपूर्ण स्तंभ है। पशुओं के रहने का स्थान सूखा, साफ और हवादार होना चाहिए। नियमित रूप से गोबर और गंदगी हटानी चाहिए ताकि मक्खियाँ, कीड़े और संक्रमण न पनपें। उचित जल निकासी व्यवस्था जरूरी है ताकि बारिश का पानी जमा न हो। धूप और छाया दोनों की व्यवस्था होनी चाहिए ताकि पशु मौसम के अनुसार आराम कर सकें। भीड़भाड़ वाले स्थानों में बीमारियाँ तेजी से फैलती हैं, इसलिए पर्याप्त जगह उपलब्ध करानी चाहिए।

स्वास्थ्य देखभाल

निवारक स्वास्थ्य देखभाल पशुओं को बीमारी से बचाने का सबसे प्रभावी तरीका है। इसमें नियमित टीकाकरण, समय–समय पर कृमिनाशन और बाहरी परजीवी नियंत्रण शामिल हैं। टीकाकरण से खुरपका–मुँहपका, गलघोंटू, रेबीज और अन्य खतरनाक बीमारियों से बचाव होता है। कृमिनाशन से आंतों के कीड़े नियंत्रित रहते हैं, जिससे पशु का वजन और स्वास्थ्य बेहतर बना रहता है। टिक, पिस्सू और जूँ जैसे बाहरी परजीवी त्वचा रोग और रक्ताल्पता का कारण बन सकते हैं, इसलिए इनका नियंत्रण जरूरी है।

प्राथमिक उपचार

प्राथमिक उपचार पशु स्वास्थ्य देखभाल का एक महत्वपूर्ण हिस्सा है, क्योंकि कई बार दुर्घटना या अचानक बीमारी के समय पशु चिकित्सक तुरंत उपलब्ध नहीं होते। प्राथमिक उपचार का उद्देश्य पशु को स्थिर रखना, दर्द कम करना और उसे सुरक्षित रूप से पशु चिकित्सक तक पहुँचाना है। इसके लिए हर फार्म या घर में एक साधारण प्राथमिक उपचार किट होनी चाहिए जिसमें बाँझ गॉज, पट्टियाँ, एंटीसेप्टिक, कैंची, थर्मामीटर, ORS, दस्ताने और टॉर्च शामिल हों।

यदि किसी पशु को चोट लगती है और खून बह रहा है, तो सबसे पहले उसे शांत रखना चाहिए। घाव को साफ पानी या सलाइन से धोकर एंटीसेप्टिक लगाना चाहिए और साफ गॉज से हल्का दबाव देकर खून रोकना चाहिए। इसके बाद पट्टी बाँधकर पशु को धीरे–धीरे क्लिनिक ले जाना चाहिए।

गर्मियों में लू लगना एक आम समस्या है, खासकर कुत्तों, मवेशियों और पोल्ट्री में लू लगने पर पशु तेजी से हाँफता है, कमजोर हो जाता है और कभी–कभी गिर भी सकता है। ऐसे में उसे तुरंत छाया में ले जाकर ठंडा पानी देना चाहिए, शरीर पर ठंडा पानी डालना चाहिए और हवा की व्यवस्था करनी चाहिए। बर्फ का सीधा उपयोग नहीं करना चाहिए क्योंकि इससे शॉक लग सकता है।

विषाक्तता की स्थिति बहुत गंभीर हो सकती है। कई बार पशु गलती से कीटनाशक, जहरीले पौधे या मानव दवाएँ खा लेते हैं। ऐसे में पशु को तुरंत उस स्रोत से दूर करना चाहिए, लेकिन बिना पशु चिकित्सक की सलाह के उल्टी नहीं करानी चाहिए। यदि संभव हो तो विष की बोतल या नमूना साथ ले जाना चाहिए ताकि डॉक्टर सही उपचार कर सकें।

हड्डी टूटने पर पशु बहुत दर्द में होता है और प्रभावित अंग का उपयोग नहीं कर पाता। ऐसे में अंग को स्थिर रखना चाहिए और लकड़ी या पट्टी से सहारा देकर सावधानीपूर्वक क्लिनिक ले जाना चाहिए। अनावश्यक हिलाने–डुलाने से चोट और बढ़ सकती है।

आपातकालीन स्थिति में सही हैंडलिंग अत्यंत महत्वपूर्ण है। सबसे पहले अपनी सुरक्षा सुनिश्चित करनी चाहिए क्योंकि घायल या डरा हुआ पशु आक्रामक हो सकता है। कुत्ते के मुँह पर हल्का कपड़ा बाँधना चाहिए, बिल्ली को तौलिये में लपेटना चाहिए और बड़े पशुओं को रस्सी या हाल्टर से नियंत्रित करना चाहिए। घोड़े के पीछे खड़ा नहीं होना चाहिए क्योंकि वह लात मार सकता है।

कुछ गंभीर स्थितियों में पशु को तत्काल जीवन रक्षक सहायता (CPR) की आवश्यकता हो सकती है, जैसे कि बेहोशी, साँस रुकना या नाड़ी न मिलना। ऐसी स्थिति में सबसे पहले श्वासनली साफ करनी चाहिए, फिर छाती पर नियंत्रित दबाव देना चाहिए और यदि प्रशिक्षित हों तो कृत्रिम श्वसन देना चाहिए। इसके साथ ही पशु को तुरंत पशु चिकित्सालय ले जाना चाहिए।

साँप काटना, सड़क दुर्घटना, कठिन प्रसव, दम घुटना और गंभीर दस्त जैसी आपात स्थितियों में त्वरित कार्रवाई जीवन बचा सकती है। साँप काटने पर पशु को शांत रखना और दौड़ने से रोकना चाहिए क्योंकि इससे विष तेजी से फैलता है। सड़क दुर्घटना में पशु को स्थिर रखकर सावधानी से ले जाना चाहिए। कठिन प्रसव में देरी करना खतरनाक हो सकता है, इसलिए तुरंत पशु चिकित्सक बुलाना चाहिए।

स्वच्छता और जैव–सुरक्षा भी बहुत जरूरी है क्योंकि कई पशु रोग मनुष्यों में फैल सकते हैं। पशु छूने के बाद हाथ धोना चाहिए, बीमार पशु से दूरी रखनी चाहिए और टीकाकरण अद्यतन रखना चाहिए।

अंत में, रिकॉर्ड रखना भी पशु स्वास्थ्य प्रबंधन का एक महत्वपूर्ण हिस्सा है। टीकाकरण की तारीख, कृमिनाशन का समय, बीमारी का इतिहास और दिए गए उपचार का विवरण लिखकर रखना चाहिए ताकि भविष्य में सही निर्णय लिया जा सके।

इस प्रकार, बुनियादी पशु स्वास्थ्य देखभाल, प्राथमिक उपचार और आपातकालीन प्रबंधन पशुओं

के जीवन की गुणवत्ता सुधारने और उनकी सुरक्षा सुनिश्चित करने के लिए अत्यंत आवश्यक हैं। सही जानकारी, सतर्कता और समय पर कार्रवाई से कई बीमारियों और दुर्घटनाओं को रोका जा सकता है।

डेयरी पशुओं में वीर्य जमाव के उचित स्थान का महत्व

अंकेश कुमार

पशु चिकित्सा क्लिनिकल कॉम्प्लेक्स विभाग, बिहार पशु विज्ञान विश्वविद्यालय, पटना

भूमिका

डेयरी पशुपालन भारतीय कृषि व्यवस्था का एक महत्वपूर्ण अंग है। दूध उत्पादन बढ़ाने, पशुओं की नस्ल सुधारने तथा किसानों की आय में वृद्धि के लिए प्रजनन प्रबंधन का विशेष महत्व है। प्रजनन की सफलता कई कारकों पर निर्भर करती है, जिनमें पशु का स्वास्थ्य, पोषण, सही समय पर गर्भाधान तथा वीर्य जमाव का उचित स्थान प्रमुख हैं।

कृत्रिम गर्भाधान तकनीक के व्यापक उपयोग के कारण यह अत्यंत आवश्यक हो गया है कि वीर्य को मादा जनन तंत्र के सही भाग में जमा किया जाए। यदि वीर्य सही स्थान पर नहीं डाला गया, तो भले ही वीर्य उच्च गुणवत्ता का हो, गर्भधारण की संभावना कम हो जाती है। इसलिए डेयरी पशुओं में वीर्य जमाव के उचित स्थान का ज्ञान एवं उसका सही अनुपालन अत्यंत आवश्यक है।

डेयरी पशुओं की प्रजनन संरचना का संक्षिप्त विवरण

वीर्य जमाव के उचित स्थान को समझने के लिए मादा पशु की जनन प्रणाली की संरचना को समझना आवश्यक है।

1. योनि

योनि बाहरी जनन अंग और गर्भाशय के बीच स्थित होती है। यह संभोग के समय वीर्य प्राप्त करने का मार्ग है, लेकिन यहाँ वीर्य जमाव गर्भाधान के लिए सबसे उपयुक्त नहीं माना जाता।

2. गर्भाशय ग्रीवा

यह एक संकरी एवं पेशीय संरचना होती है जो योनि को गर्भाशय से जोड़ती है। इसमें कई वलय होते हैं जो बाहरी पदार्थों को गर्भाशय में प्रवेश से रोकते हैं।

3. गर्भाशय

गर्भाशय का मुख्य भाग गर्भधारण एवं भ्रूण विकास का स्थान है। इसमें दो सींग होते हैं।

4. अंडवाहिनी

यहीं निषेचन होता है, जहाँ शुक्राणु और अंडाणु का मिलन होता है।

वीर्य जमाव का अर्थ

वीर्य जमाव का अर्थ है–गर्भाधान के समय वीर्य को मादा पशु के जनन तंत्र के किसी विशेष भाग में जमा करना।

डेयरी पशुओं में प्राकृतिक संभोग तथा कृत्रिम गर्भाधान दोनों ही स्थितियों में वीर्य का स्थान अत्यंत महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है।

डेयरी पशुओं में वीर्य जमाव के संभावित स्थान

1. योनि में वीर्य जमाव
2. गर्भाशय ग्रीवा में वीर्य जमाव
3. गर्भाशय के शरीर (Body of uterus) में वीर्य जमाव
4. गर्भाशय सींगों में वीर्य जमाव

इनमें से गर्भाशय के शरीर में वीर्य जमाव को सबसे उपयुक्त एवं प्रभावी माना जाता है।

उचित स्थान पर वीर्य जमाव का महत्व

1. गर्भधारण दर में वृद्धि

उचित स्थान पर वीर्य जमाव से उल्लेखनीय वृद्धि होती है। जब वीर्य सीधे गर्भाशय के शरीर में जमा किया जाता है, तो शुक्राणुओं को अंडवाहिनी तक पहुँचने में कम दूरी तय करनी पड़ती है, जिससे उनकी ऊर्जा बचती है और अधिक संख्या में शुक्राणु निषेचन स्थल तक पहुँच पाते हैं।

2. शुक्राणुओं की जीवित रहने की क्षमता में वृद्धि

योनि का वातावरण अम्लीय होता है, जो शुक्राणुओं के लिए हानिकारक है। यदि वीर्य को योनि में छोड़ दिया जाए तो अधिकांश शुक्राणु नष्ट हो जाते हैं। इसके विपरीत, गर्भाशय का वातावरण अपेक्षाकृत अनुकूल होता है, जिससे शुक्राणु अधिक समय तक जीवित रहते हैं।

3. वीर्य की कम मात्रा में प्रभावी उपयोग

कृत्रिम गर्भाधान में सीमित मात्रा में वीर्य का उपयोग किया जाता है। यदि यह वीर्य सही स्थान पर जमा किया जाए, तो कम मात्रा में भी सफल गर्भाधान संभव होता है। इससे उत्कृष्ट सांडों के वीर्य का अधिकतम उपयोग किया जा सकता है।

4. निषेचन की संभावना में वृद्धि

निषेचन अंडवाहिनी में होता है। उचित स्थान पर वीर्य जमाव से शुक्राणु तेजी से अंडवाहिनी तक पहुँचते हैं, जिससे निषेचन की संभावना बढ़ जाती है।

5. संक्रमण एवं रोगों की संभावना में कमी

गलत स्थान पर वीर्य जमाव से जनन तंत्र में चोट या संक्रमण हो सकता है। उचित तकनीक एवं सही स्थान पर वीर्य जमाव से एंडोमेट्राइटिस, मेट्राइटिस जैसी बीमारियों का खतरा कम हो जाता है।

6. भ्रूण मृत्यु दर में कमी

जब निषेचन स्वस्थ वातावरण में होता है, तो भ्रूण का विकास बेहतर होता है। इससे प्रारंभिक भ्रूण मृत्यु की संभावना कम हो जाती है।

कृत्रिम गर्भाधान में उचित स्थान का महत्व

कृत्रिम गर्भाधान में पशु चिकित्सक या प्रशिक्षित तकनीशियन द्वारा वीर्य को विशेष उपकरण (AI गन) की सहायता से गर्भाशय के शरीर में डाला जाता है। यदि AI गन गर्भाशय ग्रीवा से आगे या पीछे रह जाए, तो गर्भधारण असफल हो सकता है। इसलिए तकनीकी दक्षता और एनाटॉमिकल ज्ञान अत्यंत आवश्यक है।

गलत स्थान पर वीर्य जमाव के दुष्परिणाम

1. गर्भधारण में असफलता
2. बार–बार गर्भाधान की आवश्यकता
3. पशु के उत्पादन जीवन में कमी
4. किसानों पर आर्थिक बोझ
5. नस्ल सुधार कार्यक्रमों की असफलता

डेयरी पशुओं में वीर्य जमाव को प्रभावित करने वाले कारक

1. पशु की हीट अवस्था

यदि पशु सही हीट में नहीं है, तो उचित स्थान पर वीर्य जमाव के बावजूद गर्भधारण नहीं होगा।

2. तकनीशियन का अनुभव

अनुभवहीन व्यक्ति द्वारा गर्भाधान करने पर वीर्य गलत स्थान पर जमा हो सकता है।

3. उपकरणों की स्वच्छता

संक्रमित उपकरण जनन तंत्र को नुकसान पहुँचा सकते हैं।

भारतीय डेयरी विकास में इसका महत्व

भारत विश्व का सबसे बड़ा दूध उत्पादक देश है। राष्ट्रीय डेयरी विकास कार्यक्रमों में कृत्रिम गर्भाधान की महत्वपूर्ण भूमिका है। यदि वीर्य जमाव का स्थान सही न हो, तो ये कार्यक्रम अपने

उद्देश्य में सफल नहीं हो सकते।

निष्कर्ष

डेयरी पशुओं में वीर्य जमाव का उचित स्थान प्रजनन सफलता की कुंजी है। गर्भाशय के शरीर में सही समय पर एवं सही विधि से वीर्य जमाव करने से गर्भधारण दर में वृद्धि, भ्रूण मृत्यु में कमी, नस्ल सुधार तथा डेयरी उद्योग की आर्थिक प्रगति संभव है। अतः यह आवश्यक है कि पशुपालकों, तकनीशियनों एवं पशु चिकित्सकों को वीर्य जमाव के उचित स्थान के विषय में वैज्ञानिक प्रशिक्षण दिया जाए, ताकि डेयरी पशुपालन अधिक लाभकारी, टिकाऊ एवं उन्नत बन सके।

पोषण के मूलभूत पहलू एवं राशन संतुलन की अवधारणा

कौशलेन्द्र कुमार

पशु पोषण विभाग, बिहार पशुचिकित्सा महाविद्यालय, बिहार पशु विज्ञान विश्वविद्यालय, पटना

सारांश

पशुपालन की सफलता में संतुलित पोषण की भूमिका अत्यंत महत्वपूर्ण है, क्योंकि पशुओं की वृद्धि, स्वास्थ्य, उत्पादन तथा प्रजनन क्षमता सीधे उनके आहार की गुणवत्ता और मात्रा पर निर्भर करती है। ऊर्जा, प्रोटीन, खनिज, विटामिन एवं पानी जैसे पोषक तत्व पशु शरीर की सभी जैविक क्रियाओं के लिए आवश्यक होते हैं। इनकी कमी या असंतुलन से उत्पादन में गिरावट, रोगों की संभावना, प्रजनन समस्याएँ तथा आर्थिक हानि होती है। पशु की आयु, शरीर भार, उत्पादन स्तर (दूध, मांस या अंडा), तथा शारीरिक अवस्था जैसे गर्भावस्था या दुग्धावस्था के अनुसार राशन का निर्धारण करना आवश्यक है। संतुलित राशन में हरा चारा, सूखा चारा, सघन आहार, खनिज मिश्रण, नमक और स्वच्छ पानी का समुचित समावेश होना चाहिए। इससे न केवल पोषक तत्वों की पूर्ति होती है, बल्कि चारे की बर्बादी भी कम होती है। संतुलित पोषण अपनाने से पशु स्वस्थ रहते हैं, दूध एवं अन्य उत्पादों में वृद्धि होती है, रोग–प्रतिरोधक क्षमता मजबूत होती है तथा पशुपालकों की आय में सुधार होता है। इसलिए टिकाऊ, लाभकारी और वैज्ञानिक पशुपालन के लिए पोषण एवं राशन संतुलन के सिद्धांतों को व्यवहार में लाना अत्यंत आवश्यक है।

सूचक शब्दः संतुलित आहार, पशुपालन, पोषण, गुणवत्ता

परिचयः

पशुपालन में पोषण का अत्यंत महत्वपूर्ण स्थान है क्योंकि पशुओं की संपूर्ण उत्पादक क्षमता उनके द्वारा प्राप्त पोषण पर निर्भर करती है। पशुओं की वृद्धि, दूध, मांस अथवा अंडा उत्पादन, प्रजनन क्षमता, कार्यक्षमता, स्वास्थ्य एवं रोग प्रतिरोधक शक्ति सीधे तौर पर दिए जाने वाले आहार की गुणवत्ता और मात्रा से प्रभावित होती है। यदि पशु को उसकी आवश्यकता के अनुसार संतुलित और वैज्ञानिक ढंग से तैयार किया गया आहार दिया जाए, तो वह अपनी आनुवंशिक क्षमता के अनुरूप उत्पादन दे सकता है। संतुलित पोषण से न केवल उत्पादन में वृद्धि होती है, बल्कि चारे की बर्बादी कम होती है, पशु बीमार कम पड़ते हैं और उपचार पर होने वाला खर्च भी घटता है। इसलिए लाभकारी, टिकाऊ एवं वैज्ञानिक पशुपालन के लिए पोषण के मूलभूत सिद्धांतों की समझ और राशन संतुलन की अवधारणा को अपनाना अत्यंत आवश्यक है।

पोषण की परिभाषाः

पोषण वह जैविक एवं शारीरिक प्रक्रिया है जिसके अंतर्गत पशु अपने आहार से आवश्यक पोषक तत्वों को ग्रहण करता है, उन्हें पचाता है, अवशोषित करता है और फिर शरीर की विभिन्न आवश्यकताओं जैसे ऊर्जा उत्पादन, ऊतक निर्माण, वृद्धि, दुग्ध उत्पादन, प्रजनन तथा जीवन क्रियाओं के संचालन में उपयोग करता है। उचित पोषण पशु के जीवन के प्रत्येक चरणकृजन्म, वृद्धि, उत्पादन, गर्भावस्था और वृद्धावस्था में आवश्यक होता है। किसी भी चरण में पोषण की कमी पशु के स्वास्थ्य और उत्पादन को प्रभावित कर सकती है।

पोषण के मूलभूत पहलू

1. ऊर्जाः ऊर्जा पशु शरीर की सभी गतिविधियों का आधार है। चलना–फिरना, जुगाली करना, शरीर का तापमान बनाए रखना, दूध या अंडा उत्पादन, तथा शरीर की आंतरिक जैव–रासायनिक क्रियाएँ ऊर्जा पर ही निर्भर करती हैं। ऊर्जा मुख्य रूप से कार्बोहाइड्रेट (जैसे अनाज, भूसा) और वसा से प्राप्त होती है। यदि आहार में ऊर्जा की मात्रा कम हो, तो पशु कमजोर हो जाता है, शरीर का वजन घटने लगता है और दूध या मांस उत्पादन में गिरावट आ जाती है। लंबे समय तक ऊर्जा की कमी रहने पर पशु रोगों के प्रति अधिक संवेदनशील हो जाता है।

2. प्रोटीनः प्रोटीन शरीर के निर्माण का प्रमुख घटक है। यह मांसपेशियों, त्वचा, बाल, खुर, एंजाइम, हार्मोन और दूध के निर्माण में महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है। युवा पशुओं की वृद्धि, गर्भवती पशुओं में भ्रूण का विकास तथा दुग्ध उत्पादन के लिए पर्याप्त प्रोटीन अत्यंत आवश्यक होता है। प्रोटीन की कमी से पशु की वृद्धि रुक जाती है, दूध उत्पादन कम हो जाता है, प्रजनन समस्याएँ उत्पन्न होती हैं और रोग प्रतिरोधक क्षमता घट जाती है। दालें, खली (सरसों, मूंगफली), सोयाबीन, बरसीम और अल्फाल्फा प्रोटीन के अच्छे स्रोत हैं।

3. खनिज तत्वः खनिज तत्व पशु शरीर के लिए अत्यंत आवश्यक होते हैं, भले ही इनकी आवश्यकता कम मात्रा में होती है। कैल्शियम और फास्फोरस हड्डियों और दाँतों की मजबूती के लिए आवश्यक हैं, जबकि आयरन रक्त निर्माण में सहायक होता है। कॉपर, जिंक, मैंगनीज और सेलेनियम जैसे सूक्ष्म खनिज एंजाइम क्रियाओं, प्रजनन और रोग प्रतिरोध में महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं। खनिज की कमी से हड्डियों का कमजोर होना, दूध ज्वर, बांझपन, भ्रूण मृत्यु और उत्पादन में कमी जैसी समस्याएँ उत्पन्न हो सकती हैं। इसलिए आहार में खनिज मिश्रण का समावेश आवश्यक है।

4. विटामिनः विटामिन शरीर की चयापचय क्रियाओं को सुचारु रूप से चलाने में सहायक होते हैं। विटामिन A आँखों की दृष्टि और रोग प्रतिरोध के लिए, विटामिन D कैल्शियम–फास्फोरस के अवशोषण के लिए, विटामिन E प्रजनन और विटामिन K रक्त के थक्के जमाने में सहायक होता है। हरे चारे, अच्छी गुणवत्ता के दाने और धूप के माध्यम से अधिकांश विटामिनों की पूर्ति हो जाती है। विटामिन की कमी से उत्पादन और स्वास्थ्य दोनों प्रभावित होते हैं।

5. पानीः जल जीवन का आधार है और पशु पोषण का सबसे महत्वपूर्ण घटक माना जाता है। शरीर की लगभग सभी जैविक क्रियाएँ जल की उपस्थिति में ही होती हैं। पाचन, पोषक तत्वों का परिवहन, शरीर का तापमान नियंत्रण और दूध उत्पादन, जल पर निर्भर करते हैं। स्वच्छ, ताजा और पर्याप्त मात्रा में जल न मिलने पर पशु का चारा सेवन और दूध उत्पादन दोनों कम हो जाते हैं।

तालिका 1. पोषक तत्व एवं उनके कार्य

पोषक तत्व	प्रमुख कार्य	कमी के लक्षण	स्रोत
ऊर्जा	शरीर क्रियाएं, उत्पादन	कमजोरी, कम दूध	मक्का, जौ, चोकर
प्रोटीन	वृद्धि, दूध निर्माण	कम वृद्धि	खली, दालें
खनिज	हड्डी, रक्त	अस्थि रोग	खनिज मिश्रण
विटामिन	चयापचय	रोग	हरा चारा
जल	पाचन, ताप नियंत्रण	निर्जलीकरण	स्वच्छ पानी

राशन की अवधारणा :

राशन से आशय उस कुल आहार से है जो किसी पशु को 24 घंटे में दिया जाता है। राशन की मात्रा और संरचना पशु की आयु, शरीर भार, उत्पादन स्तर (जैसे दूध की मात्रा), कार्य क्षमता और शारीरिक अवस्था (गर्भावस्था, दूध देने की अवस्था) पर निर्भर करती है। सभी पशुओं के लिए एक समान राशन उपयुक्त नहीं होता।

तालिका 2. विभिन्न पशुओं के लिए राशन आवश्यकता

पशु	हरा चारा	सूखा चारा	दाना
दुधारू गाय	20 – 25 किग्रा	5 – 6 किग्रा	4 – 5 किग्रा
भैंस	25 – 30 किग्रा	6 – 7 किग्रा	5 – 6 किग्रा
बछड़ा	5 – 8 किग्रा	1 – 2 किग्रा	1 किग्रा

राशन संतुलन की अवधारणा :

राशन संतुलन का अर्थ है ऐसा आहार तैयार करना जिसमें ऊर्जा, प्रोटीन, खनिज, विटामिन और जल आवश्यक पोषक तत्व पशु की आवश्यकता के अनुसार सही मात्रा और उचित अनुपात में उपलब्ध हों। संतुलित राशन देने से पशु अपने शरीर की आवश्यकताओं को पूरा करते हुए अधिकतम उत्पादन दे पाता है और अनावश्यक पोषक तत्वों की बर्बादी नहीं होती, जिससे चारा लागत कम होती है।

संतुलित राशन के घटक :

1. हरा चारा – विटामिन, खनिज और रेशा प्रदान करता है तथा पाचन में सहायक होता है।
2. सूखा चारा – जुगाली करने वाले पशुओं के लिए आवश्यक रेशा उपलब्ध कराता है।
3. संकेन्द्रित आहार – ऊर्जा और प्रोटीन का सघन स्रोत होता है।
4. खनिज मिश्रण – खनिजों की कमी को पूरा करता है।
5. नमक – भूख बढ़ाने और शरीर की चयापचय क्रियाओं के लिए आवश्यक होता है।

तालिका 3. उदाहरण–10 लीटर दूध देने वाली गाय

घटक	मात्रा
हरा चारा	25 किग्रा
सूखा चारा	6 किग्रा
दाना	4 किग्रा
खनिज मिश्रण	50 ग्राम
नमक	30 ग्राम

राशन संतुलन के लाभ :

- दूध, मांस और अंडा उत्पादन में वृद्धि
- पशुओं के स्वास्थ्य और रोग प्रतिरोधक क्षमता में सुधार
- प्रजनन क्षमता और गर्भधारण दर में वृद्धि
- चारे की बर्बादी में कमी
- पशुपालन की कुल लागत में कमी और लाभ में वृद्धि

राशन संतुलन में ध्यान देने योग्य बातें:

- पशु की आयु, वजन और उत्पादन स्तर का सही आकलन
- स्थानीय रूप से उपलब्ध चारे का अधिकतम उपयोग
- हरे और सूखे चारे का संतुलित अनुपात
- खनिज मिश्रण और स्वच्छ जल की नियमित उपलब्धता
- समय–समय पर पशु की शारीरिक स्थिति और उत्पादन की निगरानी

निष्कर्ष

पोषण के मूलभूत पहलुओं की सही समझ और राशन संतुलन की वैज्ञानिक अवधारणा पशुपालन की सफलता की आधारशिला है। संतुलित राशन से पशु स्वस्थ रहते हैं, उत्पादन बढ़ता है और पशुपालकों की आय में सुधार होता है। अतः टिकाऊ, लाभकारी और आधुनिक पशुपालन के लिए राशन संतुलन को अपनाना अत्यंत आवश्यक है।

पशुओं में कृत्रिम गर्भाधान एवं उनके महत्व

एस० के० शीतल
पशु गर्भ विज्ञान विभाग,
बिहार पशुचिकित्सा महाविद्यालय, बिहार पशु विज्ञान विश्वविद्यालय, पटना

परिचय

कृत्रिम गर्भाधान वह विधि है जिसमे नर पशु से वीर्य एकत्रित करके मादा पशु के जननांग में मदकाल के समय डाला जाता है। इस प्रक्रिया को पूरा करने में कृत्रिम गर्भाधान गन के द्वारा मादा पशु के गर्भाशय में वीर्य को डाला जाता है। वीर्य डालते समय स्वच्छता का अच्छी तरह से ख्याल रखना चाहिए ताकि मादा पशु में किसी भी तरह का संक्रमण न हो। इसके बाद मादा पशु गाभिन हो जाती है और गर्भावस्था के पूर्ण होने पर बछड़े या बछिया का जन्म होता है। कृत्रिम गर्भाधान के द्वारा उत्तम नस्ल के वीर्य का इस्तेमाल करके पशुओं का नस्ल सुधार किया जाता है। इसका सुदूर स्थानों में आसानी से उपयोग किया जा सकता है। घरेलु जानवारों में कृत्रिम गर्भाधान का पहला वैज्ञानिक शोध 1780 में इटली के महान वैज्ञानिक लाज़ारो स्पैलंजनी द्वारा कुत्तों पर किया गया था। डेयरी को लाभदायक बनाने के लिए प्रति पशु दूध उत्पादन को बढ़ाने की आवश्यकता होती है। दूध उत्पादन बढ़ाने के लिए उच्च आनुवंशिक क्षमता वाले जानवरों के वीर्य का उपयोग करके जानवरों की भावी पीढ़ियों में आनुवंशिक क्षमता में सुधार करके बढ़ाया जा सकता है।

प्राकृतिक और कृत्रिम गर्भाधान

प्राकृतिक गर्भाधान के लिए सांढ़ का उपयोग किया जाता है। सांढ़ के उपयोग से संक्रमण की सम्भावना भी बहुत रहती है। सांढ़ के खिलाने एवं पालने में बहुत ज्यादा खर्चा होता है जिसका वहन एक साधारण पशुपालक नहीं कर पाता है। साथ ही प्राकृतिक गर्भाधान में एक सांढ़ से महीने में 50–100 गायों का ही गर्भादान हो सकता है। कृत्रिम गर्भाधान में सांढ़ से वीर्य एकत्रित करके उसको बहुत मात्रा में स्ट्रॉ के रूप में भरा जाता है और उसे संरक्षित किया जाता है। संरक्षित स्ट्रॉ का कभी भी इस्तेमाल किया जा सकता है।

कृत्रिम गर्भाधान के फायदे और सीमाएँ

पशुधन में कृत्रिम गर्भाधान के बहुत सारे फायदे और सीमाएं हैं। जो फायदे और सीमायें मुख्य रूप से मवेशियों पर लागू होते हैं उनकी चर्चा नीचे की गई है:

लाभः

1. **नस्ल की गुणवत्ता में सुधारः**

कृत्रिम गर्भाधान के माध्यम से चयनित अच्छी गुणवत्ता वाले बैल के निरंतर उपयोग से मवेशियों के झुंड में नस्ल सुधार होता है।

2. किसानों के लिए लाभकारी तकनीकः

इस तकनीक में केवल चयनित सांडों को ही कार्यक्रम में प्रजनन के उद्देश्य से रखा जाता है और वीर्य प्राप्त किया जाता है। इससे किसानों द्वारा सांढ़ पालन पर पड़ने वाला बोझ और खर्च दोनों कम हो जाता है।

3. बेहतर जर्मप्लाज्म का उपयोग

सांढ़ के वीर्य के एक स्खलन से अनेक खुराकों (सीमेन स्ट्रॉ) को बनाया जाता है और इस प्रकार अच्छी गुणवत्ता वाले सांढ़ का उपयोग उनकी अधिकतम सीमा तक किया जाता है। इस तकनीक द्वारा सांढ़ एक साल में आसानी से 10,000–20,000 मवेशी को गाभिन कर सकता है।

4. छोटी / बड़ी मादा पशु का प्रजनन

सांढ़ और मादा पशु के आकार में बड़ी भिन्नता प्राकृतिक संभोग को रोक सकती है। परन्तु बहुत बड़े या बहुत छोटे शरीर के आकार वाली गायों को भी कृत्रिम गर्भाधान बिना किसी कठिनाई के किया जाता है।

5. सांढ़ की मृत्यु के बाद बछड़े का जन्म

सांड के अतिहिमीकृत वीर्य को कृत्रिम गर्भाधान कार्यक्रम में इस्तेमाल किया जाता है। एक अच्छी गुणवत्ता वाले बैल से एकत्रित वीर्य को LN2 कंटेनर में संरक्षित किया जाता है और बैल की मृत्यु के बाद भी इसका इस्तेमाल किया जा सकता है।

6. आसान परिवहन

गर्भाधान प्रयोजनों के लिए बैल को एक स्थान से दूसरे स्थान पर ले जाना बहुत मुश्किल होता है, जबकि वीर्य को आसानी से ले जाया जा सकता है।

7. प्रारंभिक रोग निदान

वीर्य संग्रह और कृत्रिम गर्भाधान के दौरान, सांढ़ और गाय के जननांगों का बारीकी से निरीक्षण

किया जाता है। जिससे जननांग के बिमारियों का पता चल जाता है और उपचार सही समय पर हो जाता है।

8. यौन संचारित रोगों की रोकथाम

प्रजनन सांढ़ों के सामान्य और प्रजनन स्वास्थ्य की नियमित रूप से जांच की जाती है और रोगग्रस्त सांडों का या तो ठीक से इलाज किया जाता है या उन्हें हटा दिया जाता है। यह क्रिया झुंडों में यौन संचारित रोगों के फैलने के जोखिम को कम करती है।

9. शारीरिक रूप से लंगड़े सांढ़ से प्रजनन

जो सांढ़ किसी कारण या अन्य कारण से माउंट करने में असमर्थ होते हैं उन्हें कृत्रिम गर्भाधान में इस्तेमाल किया जा सकता है, ऐसे बैलों के वीर्य को इलेक्ट्रो–स्खलन का उपयोग करके एकत्र किया जा सकता है ।

10. दिलचस्प तकनीकः

यह एक दिलचस्प तकनीक है क्योंकि कृत्रिम गर्भाधान पशुधन प्रजनन के प्रबंधन में मदद करता है।

11. बेहतर रिकॉर्ड रखना

कृत्रिम गर्भाधान के परिणाम बेहतर रिकॉर्ड रखने में मदद करते हैं जो जानवरों की उत्पादक क्षमता के मूल्यांकन में मदद करता है।

12. एक सुरक्षित तकनीक

चूंकि कृत्रिम गर्भाधान कार्यक्रम में केवल चयनित सांढ़ों को रखा जाता है, इसलिए श्रमिकों को पशुओं से होने वाला खतरा कम हो जाता है। इसके अलावा, नर को खेत में नहीं लाया जाता है; यह आगे बेहतर सुरक्षा की प्रदान करता है।

13. अच्छे सांढ़ के चयन में मदद

इस तकनीक में, संग्रहीत वीर्य का व्यापक उपयोग होता है; सांढ़ की बेटी का मूल्यांकन न्यूनतम संभव अवधि में अधिक संख्या में किया जा सकता है। संतान परीक्षण किए गए सांढ़ का चयन करने में यह बहुत मदद करता है।

14. कृत्रिम गर्भाधान उन गायों में भी किया जा सकता है जो गर्मी के संकेत दिखाती हैं लेकिन संभोग की अनुमति नहीं देती हैं।

सीमाएंः

1. आनुवंशिक असामान्यताओं का तेजी से प्रसार

कृत्रिम गर्भाधान में जेनेटिक असामान्यताएं बहुत तेजी से फैलती हैं। उदाहरण के लिए सिस्टिक अंडाशय, खराब रचना और कामेच्छा की कमी आदि।

2. भ्रूण का नुकसान

कभी –कभी गर्भवती पशु में भी गर्मी के लक्षण दिखाई देता है। इस दौरान बिना गाभिन जाँच के कृत्रिम गर्भाधान से भ्रूण गर्भपात का नुकसान हो सकता है। अतः पशु को गाभिन जाँच करके ही कृत्रिम गर्भादान करना चाहिए।

3. कुशल व्यक्तियों की आवश्यकता

इस तकनीक में मादाओं के प्रजनन पथ की संरचना और कार्य के ज्ञान की आवश्यकता होती है। वीर्य संग्रह, वीर्य परीक्षा, वीर्य विस्तार, वीर्य जमने और गर्भाधान जैसे कार्यों के लिए प्रशिक्षित व्यक्तियों की आवश्यकता होती है।

4. विशेष सुविधाओं की आवश्यकता

कृत्रिम गर्भाधान के लिए प्रयोगशाला और उपकरण (A.I. बंदूक, क्रायो कैन, विगलन इकाई, आदि), आदि जैसी विशेष सुविधाओं की आवश्यकता होती है।

सांढ़ों से वीर्य का संग्रह, मूल्यांकन, प्रसंस्करण, संरक्षण एवं पैलकग

एस० के० शीतल

पशु गर्भ विज्ञान विभाग

बिहार पशुचिकित्सा महाविद्यालय, बिहार पशु विज्ञान विश्वविद्यालय, पटना

वीर्य एक जैविक तरल पदार्थ है, जिसे वीर्य तरल भी कहते हैं, जिसमे सामान्यतः शुक्राणु (स्पर्म) होते हैं। यह जननग्रन्थि (यौन ग्रंथियां) नर अंगों द्वारा स्रावित होता है और मादा अंडाणु को निषेचित कर सकता है। दूसरे शब्दों में, वीर्य में दो अलग–अलग घटक होते हैंः शुक्राणु और द्रव। यह चिपचिपा, मलाईदार, रंग में थोड़ा पीला या भूरा होता है। सेमिनल प्लाज़्मा एक जटिल तरल पदार्थ है जो शुक्राणु को ऐसा माध्यम प्रदान करते हैं जहां वे चल–फिर सकें या "तैर" सकें।

वीर्य का संग्रहः

सम्भोग के बाद योनि से वीर्य का संग्रह सबसे सरल और प्रारंभिक तरीका था। इस पद्धति में, सांढ़ को प्राकृतिक रूप से एस्ट्रस के दौरान गाय को माउंट कराया जाता है और वीर्य को एक चम्मच या स्पंज या सिरिंज के माध्यम से योनि से एकत्र किया जाता है। सेमिनल पुटिका और एमपुल्ला की मैनुअल मालिश मलद्वार से करने पर भी वीर्य संग्रह किया जाता है। हाल के परिदृश्य में, कृत्रिम योनि विधि द्वारा ज्यादातर सांढ़ से एकत्र किया जाता है। यह सांढ़ से वीर्य संग्रह का सबसे पसंदीदा और अच्छा तरीका है। भोजन करने से पहले सुबह के शुरुआती घंटों में सांढ़ से वीर्य एकत्र किया जाता है।

मूल्यांकन

कृत्रिम योनि के माध्यम से साफ वीर्य प्राप्त करने के बाद इसकी मात्रा को रिकॉर्ड किया जाता है। इसके बाद लैमिनार यूनिट के पास 32–36 डिग्री सेल्सियस पर पानी में रखा जाता है। संग्रह के तुरंत बाद, मात्रा, रंग, और स्थिरता, अन्य पदार्थ की उपस्थिति, गतिशीलता, व्यक्तिगत गतिशीलता और एकाग्रता के लिए वीर्य का मूल्यांकन किया जाता है । एक शीशे की स्लाइड पर वीर्य की एक बूंद रखकर गतिशीलता के लिए माइक्रोस्कोप में देखा जाता है । +3 से अधिक गतिशीलता वाले स्खलन को आगे की प्रक्रिया के लिए चुना जाता है।

संरक्षण

वीर्य का संरक्षण तीन प्रकारों से किया जाता है। इनका वर्गीकरन निचे दिया गया हैः

1) कमरे के तापमान पर वीर्य संरक्षण

2) रेफ्रिजरेशन तापमान पर वीर्य संरक्षण

3) उप शून्य तापमान या क्रायोप्रेज़र्वेशन पर वीर्य संरक्षण

कमरे के तापमान एवं प्रशीतन तापमान पर वीर्य संरक्षण बहुत पुरानी हो चुकी है। क्योंकि इस विधि से वीर्य का संरक्षण बहुत ही काम दिनों के लिए किया जा सकता है। आजकल उप शून्य तापमान या क्रायोप्रेज़र्वेशन पर वीर्य संरक्षण किया जाता है। इस विधि से वीर्य को बहुत दिनों तक संरक्षित किया जाता है। क्रायोप्रेज़र्वेशन एक ऐसी प्रक्रिया है जिसमें वीर्य को कम उप–तापमान पर ठंडा करके संरक्षित किया जाता है। क्रायोप्रेज़र्वेशन के लिए सबसे पसंदीदा माध्यम लिक्विड नाइट्रोजन (LN_2) है। तरल नाइट्रोजन का तापमान –196 डिग्री सेंटीग्रेड इतने कम तापमान पर, किसी भी जैविक गतिविधि को प्रभावी ढंग से रोक दिया जाता है। क्रायोप्रेज़र्वेशन में कई चरण शामिल हैं जैसे, तरल मिलाना , ठंडा होना, ठंड और विगलन। क्रायोप्रिजर्वेशन के दौरान शुक्राणु कोशिकाओं को नुकसान पहुंचाने वाली घटनाएं मुख्य रूप से ठंड के झटके, समाधान प्रभाव और इंट्रासेल्युलर बर्फ क्रिस्टल के निर्माण से होता है।

अंडे की जर्दी वीर्य को पतला करनेवाले माध्यम में मौजूद डरता है और शीतलन के दौरान शुक्राणु को ठंड के झटके से बचाती है। इसके अलावा, वीर्य को पतला करनेवाले माध्यम में क्रायोप्रोटेक्टेंट (ग्लिसरॉल आदि) को जोड़ना बहुत आवश्यक है क्योंकि वे ठंड और विगलन के दौरान बर्फ के क्रिस्टल के गठन को संशोधित करते हैं।

मिनी और मध्यम स्ट्रॉ की संरचना

मिनी और मध्यम स्ट्रॉ पॉलीविनाइल क्लोराइड से बने होते हैं जो प्लास्टिक का एक प्रकार है। फ्रेंच मिनी स्ट्रॉ की मात्रा 0–25 मिली और मध्यम स्ट्रॉ 0–50 मिली होती है। स्ट्रॉ के एक छोर में कॉटन–पॉलीविनाइल अल्कोहल (PVA) पाउडर– कॉटन होता है। इस छोर को फैक्ट्री सील या निर्माता सील कहा जाता है। पॉलीविनाइल अल्कोहल पाउडर के साथ प्रयोगशाला में वीर्य भरने के बाद या प्रयोगशाला सील नामक स्ट्रॉ के अंत को दबाकर दूसरे खुले छोर को सील कर दिया जाता है। कृत्रिम गर्भाधान के समय, स्ट्रॉ कटर / कैंची की मदद से स्ट्रॉ के प्रयोगशाला सिरे को काट दिया जाता है।

स्ट्रॉ और उसपर मुद्रित जानकारी

स्ट्रॉ भरने से पहले एक स्वचालित स्ट्रॉ प्रिंटिंग मशीन का उपयोग करके स्ट्रॉ पर सांढ़, नस्ल, वीर्य बैंक का नाम और वीर्य संग्रह की तारीख का नाम छपा होता है। सभी वीर्य स्टेशन निम्नलिखित मुद्रण संक्षिप्तताओं का पालन करते हैः

Jersey	–	JY
Holstein	–	HF
HF Cross	–	CB HF
Jersey Cross	–	CB JY
Sunandini	–	SUN
Sahiwal	–	SAH
Red Sindhi	–	RS
Kankrej	–	KANK
Gir	–	GIR
Tharparkar	–	THAR
Rathi	–	RATHI
Hariana	–	HAR
Ongole	–	ONGL
Deoni	–	DEONI
Khillar	–	KHLR
Dangi	–	DANGI
Amritmahal	–	AMHL
Murrah Buffalo	–	MBF
Surti Buffalo	–	SBF
Jaffrabadi Buffalo	–	JBF
Mehsana Buffalo	–	MSNB
Nilli Ravi Buffalo	–	NLRVB
Banni Buffalo	–	BBF
Bhadawari Buffalo	–	BDBF
Pandharpuri Buffalo	–	PNPB

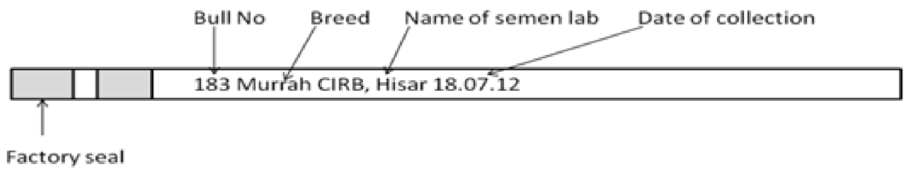

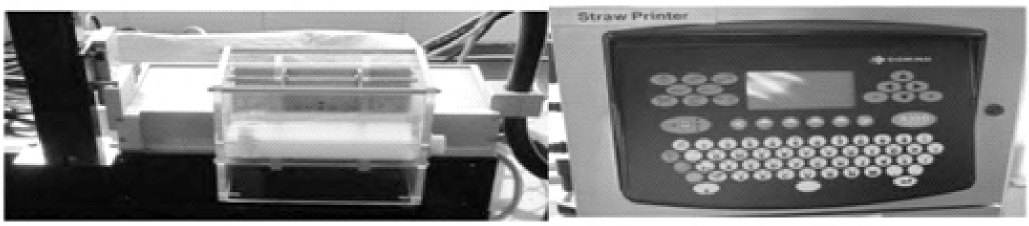

Source: Internet

सांढ़ों के नस्लों का स्ट्रॉ रंग कोड

वीर्य हस्तांतरण और कृत्रिम गर्भाधान के दौरान नस्ल की पहचान के लिए स्ट्रॉ के रंग कोड महत्वपूर्ण हैं। सभी वीर्य स्टेशन नीचे दिए गए निम्नलिखित रंग कोड का पालन करेंगे:

Breed	Colour of straw
Holstein	Pink/Rose
HF Crossbred	Pistachio Green (light green)
Jersey	Yellow
Jersey Crossbred	Salmon
Indigenous cattle	Orange
Sunandini	Blue
Buffalo	Grey

गाय–भैंस के नर प्रजनन अंग

चन्द्र शेखर आजाद एवं दीपशिखा
पशुचिकित्सा प्रसूति शास्त्र एवं प्रसूति विज्ञान विभाग
बिहार पशुचिकित्सा महाविघालय, पटना

सारांश

गाय एवं भैंस जैसे बोवाइन पशुओं में नर प्रजनन तंत्र प्रजनन प्रक्रिया की आधारशिला है। इस तंत्र का प्रमुख उद्देश्य कार्यशील शुक्राणुओं का निर्माण, उनका संरक्षण, परिपक्वता तथा मादा जनन मार्ग में उनका सफल स्थानांतरण सुनिश्चित करना है। इसके अतिरिक्त नर प्रजनन अंग टेस्टोस्टेरोन हार्मोन का स्राव कर नर पशु के शारीरिक विकास, यौन प्रवृत्ति एवं द्वितीयक लैंगिक लक्षणों को नियंत्रित करते हैं। प्रस्तुत लेख में गाय–भैंस के नर प्रजनन अंगों की संरचना, कार्य तथा व्यावहारिक महत्व का सरल एवं लोकप्रिय शैली में वर्णन किया गया है, जिससे यह जानकारी विद्यार्थियों, किसानों तथा पशु चिकित्सकों के लिए उपयोगी सिद्ध हो सके।

सूचक शब्द : प्रजनन अंग, शुक्राणु, वृषण, गर्भधारण।

परिचय

पशुपालन क्षेत्र में सफल प्रजनन उत्पादन क्षमता और आर्थिक लाभ का मुख्य आधार है। सामान्यतः प्रजनन विफलता की स्थिति में अधिक ध्यान मादा पशु पर दिया जाता है, जबकि नर पशु की प्रजनन क्षमता भी उतनी ही महत्वपूर्ण भूमिका निभाती है। वास्तव में, कई बार गर्भधारण में असफलता का कारण नर पशु के प्रजनन अंगों की कार्यक्षमता में कमी होती ळें गाय और भैंस में एक स्वस्थ सांड न केवल उच्च गुणवत्ता का वीर्य उत्पन्न करता है, बल्कि कृत्रिम गर्भाधान एवं प्राकृतिक संकरण दोनों में बेहतर परिणाम देता है। नर प्रजनन तंत्र का अध्ययन प्रजनन रोगों की पहचान, बांझपन की रोकथाम और नस्ल सुधार कार्यक्रमों की सफलता के लिए अत्यंत आवश्यक है। इसी उद्देश्य से इस लेख में नर प्रजनन अंगों का विस्तृत किंतु सरल विवरण प्रस्तुत किया गया है।

विस्तृत विवरण

गाय–भैंस के नर प्रजनन अंगों को कार्य और स्थिति के आधार पर तीन प्रमुख वर्गों में विभाजित किया जा सकता है–

1. प्राथमिक प्रजनन अंग
2. सहायक प्रजनन अंग
3. बाह्य जनन अंग

1. वृषण

वृषण नर प्रजनन तंत्र के मूल अंग होते हैं और अंडकोश के भीतर स्थित रहते हैं। प्रत्येक नर पशु में दो वृषण पाए जाते हैं, जिनका समुचित विकास उसकी प्रजनन क्षमता को दर्शाता है। वृषण के अंदर सूक्ष्म नलिकाएँ होती हैं, जहाँ शुक्राणु बनने की प्रक्रिया निरंतर चलती रहती है। इन अंगों का अपेक्षाकृत कम तापमान शुक्राणु निर्माण के लिए आवश्यक होता है।

मुख्य कार्यः

- शुक्राणुओं का उत्पादन
- नर हार्मोन टेस्टोस्टेरोन का स्राव

2. अंण्डकोश

अंण्डकोश एक त्वचीय संरचना है जो वृषणों को धारण करती है। यह न केवल उन्हें बाहरी क्षति से बचाता है, बल्कि उनके तापमान को नियंत्रित करने में भी महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है। पर्यावरणीय तापमान के अनुसार अंण्डकोश की स्थिति में परिवर्तन होता रहता है।

मुख्य विशेषताएँ:

- तापमान नियंत्रण
- शुक्राणु उत्पादन के लिए अनुकूल वातावरण

3. एपिडिडिमिस

एपिडिडिमिस वृषण से सटी हुई एक लंबी, कुंडलित नली होती है, जिसे तीन भागों—सिर, शरीर और पूँछ—में विभाजित किया जाता है। पूँछ भाग में परिपक्व एवं सक्रिय शुक्राणु संग्रहीत रहते हैं।

कार्य

- शुक्राणुओं का अस्थायी भंडारण
- शुक्राणुओं को परिपक्व बनाना
- गतिशीलता प्रदान करना

4. शुक्रवाहिनी (Vas Deferens)

शुक्रवाहिनी एक मजबूत पेशीय नली होती है, जो एपिडिडिमिस से निकलकर मूत्रमार्ग

तक जाती है। इस नली की पेशीय दीवारें स्खलन के दौरान सक्रिय रूप से संकुचित होती हैं।

मुख्य कार्य

- स्खलन के समय शुक्राणुओं को आगे तक ले जाना

5. सहायक जनन ग्रंथियाँ (Accessory Sex Glands)

गाय–भैंस में सहायक ग्रंथियाँ वीर्य के द्रव भाग का निर्माण करती हैं, जो शुक्राणुओं के लिए पोषक एवं सुरक्षात्मक माध्यम प्रदान करता है। इन ग्रंथियों का स्राव शुक्राणुओं की जीवित रहने की अवधि और क्रियाशीलता को बढाता है।

प्रमुख ग्रंथियाँ:

- **सेमिनल वेसिकल**

सेमिनल वेसिकल गाय–भैंस में सबसे प्रमुख सहायक जनन ग्रंथियाँ होती हैं। ये शुक्रवाहिनी के अंतिम भाग के पास स्थित रहती हैं। इन ग्रंथियों से स्रावित द्रव वीर्य का मुख्य भाग बनाता है, जिसमें फ्रक्टोज जैसे पोषक तत्व होते हैं। यह द्रव शुक्राणुओं को ऊर्जा प्रदान करता है तथा उनकी गतिशीलता और जीवित रहने की क्षमता को बढाता है।

- **प्रोस्टेट ग्रंथि:**

प्रोस्टेट ग्रंथि मूत्रमार्ग के चारों ओर स्थित होती है। यह क्षारीय प्रकृति का स्राव उत्पन्न करती है, जो वीर्य की अम्लीयता को संतुलित करने में सहायक होता है। प्रोस्टेट का स्राव शुक्राणुओं की सक्रियता को बनाए रखने तथा मादा जनन पथ में उनकी सुरक्षा में महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है।

- **बल्बोयूरेथ्रल ग्रंथि:**

बल्बोयूरेथ्रल ग्रंथि मूत्रमार्ग के पिछले भाग में पाई जाती है। इसका स्राव गाढा और श्लेष्मीय होता है, जो स्खलन से पहले मूत्रमार्ग को चिकना बनाता है। यह मूत्रमार्ग में उपस्थित अवशिष्ट अम्लीय पदार्थों को निष्क्रिय कर शुक्राणुओं के सुरक्षित प्रवाह में सहायता करता है।

6. मूत्रमार्ग (Urethr)

मूत्रमार्ग एक साझा मार्ग है, जिसके माध्यम से मूत्र एवं वीर्य बाहर निकलते हैं। स्खलन के समय मूत्र का प्रवाह अस्थायी रूप से रुक जाता है।

7. शिश्न (Penis)

शिश्न नर प्रजनन तंत्र का बाह्य एवं क्रियात्मक अंग है। गाय–भैंस में यह फाइब्रो–इलास्टिक प्रकार का होता है, जो संभोग के समय फैलता है।

मुख्य कार्य

- वीर्य को मादा जनन पथ में प्रविष्ट कराना

निष्कर्ष

गाय–भैंस के नर प्रजनन अंगों की संरचना और उनके कार्य आपस में गहराई से जुडे हुए हैं। किसी भी एक अंग की कार्यक्षमता में कमी पूरी प्रजनन प्रक्रिया को प्रभावित कर सकती है। स्वस्थ वृषण, सुव्यवस्थित सहायक ग्रंथियाँ और कार्यशील शिश्न मिलकर अच्छी गुणवत्ता वाले शुक्राणुओं का निर्माण एवं सफल संकरण सुनिश्चित करते हैं। यही कारण है कि नर पशु की प्रजनन क्षमता सीधे–सीधे गर्भाधान दर, बछडों की संख्या तथा नस्ल सुधार कार्यक्रमों की सफलता को प्रभावित करती है। नर प्रजनन अंगों का स्वास्थ्य बनाए रखने के लिए संतुलित एवं पोषक आहार, जिसमें पर्याप्त ऊर्जा, प्रोटीन, खनिज और विटामिन हों, अत्यंत आवश्यक है। इसके साथ–साथ उचित आवास, स्वच्छ वातावरण, तापीय तनाव से बचाव और नियमित व्यायाम भी प्रजनन क्षमता को बनाए रखने में सहायक होते हैं। समय–समय पर वीर्य परीक्षण, शारीरिक परीक्षण तथा प्रजनन रोगों की शीघ्र पहचान द्वारा बांझपन जैसी समस्याओं को प्रारंभिक अवस्था में ही नियंत्रित किया जा सकता है।

अंततः यह कहा जा सकता है कि यदि नर पशुओं के प्रजनन अंगों की देखभाल वैज्ञानिक ढंग से की जाए, तो न केवल गर्भाधान की सफलता बढती है, बल्कि स्वस्थ संतति, बेहतर उत्पादन और दीर्घकालिक आर्थिक लाभ भी सुनिश्चित होता है। इस प्रकार नर प्रजनन स्वास्थ्य पर दिया गया ध्यान पशुपालन को अधिक टिकाऊ, उन्नत और लाभकारी बनाने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है।

विभिन्न पशुओं में वीर्य संग्रहण

[1]आलोक कुमार एवं [2]जे.के. प्रसाद

[1] सहायक प्राध्यापक, वेटरनरी गायनेकोलॉजी एण्ड ऑब्स्टेट्रिक्स, [2]भूतपूर्व अधिष्ठाता,बिहार पशु चिकित्सा महाविद्यालय, बिहार पशु विज्ञान विश्वविद्यालय, पटना एवं प्रधान, आई.भी. आर.आई।

परिचय

पशु प्रजनन विज्ञान में वीर्य संग्रह का स्थान अत्यंत महत्वपूर्ण माना जाता है, क्योंकि आधुनिक प्रजनन तकनीकों की पूरी संरचना इसी पर आधारित होती है। कृत्रिम गर्भाधान, वीर्य संरक्षण, वीर्य प्रसंस्करण, नस्ल सुधार तथा आनुवंशिक उन्नयन जैसे सभी आधुनिक प्रजनन कार्यक्रमों की सफलता सीधे तौर पर वीर्य की गुणवत्ता पर निर्भर करती है। यदि वीर्य गुणवत्तापूर्ण न हो, तो चाहे कितनी ही उन्नत तकनीकों का प्रयोग क्यों न किया जाए, अपेक्षित गर्भधारण दर एवं संतोषजनक परिणाम प्राप्त नहीं हो पाते। इसी कारण वीर्य संग्रह की प्रक्रिया को केवल एक प्रारंभिक चरण न मानकर, सम्पूर्ण प्रजनन कार्यक्रम का सबसे संवेदनशील एवं निर्णायक चरण माना जाता है।

वीर्य संग्रह केवल एक यांत्रिक या तकनीकी प्रक्रिया नहीं है, बल्कि यह नर पशु की शारीरिक संरचना, यौन व्यवहार, हार्मोनल स्थिति, स्वास्थ्य दशा तथा पर्यावरणीय परिस्थितियों से गहराई से जुड़ी हुई जैविक प्रक्रिया है। नर पशु की आयु, पोषण स्तर, यौन उत्तेजना, प्रशिक्षण, संभालने की विधि तथा संग्रह के समय उपस्थित तनाव जैसे अनेक कारक वीर्य की मात्रा और गुणवत्ता को प्रभावित करते हैं। यदि वीर्य संग्रह वैज्ञानिक तरीके से, उचित वातावरण में और सही विधि द्वारा न किया जाए, तो उच्च आनुवंशिक क्षमता वाले नर पशु से भी निम्न गुणवत्ता का वीर्य प्राप्त हो सकता है, जिससे गर्भधारण दर में कमी आती है और उत्पन्न संतति की उत्पादकता एवं प्रजनन क्षमता पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ता है।

प्राकृतिक प्रजनन की तुलना में कृत्रिम गर्भाधान कार्यक्रमों में एक ही नर पशु के वीर्य का उपयोग बड़ी संख्या में मादाओं में किया जाता है। यह व्यवस्था आनुवंशिक सुधार की दृष्टि से अत्यंत लाभकारी है, क्योंकि इससे श्रेष्ठ नर पशुओं के गुण कम समय में पूरी पशु आबादी में फैलाए जा सकते हैं। हालांकि, इस लाभ के साथ यह जिम्मेदारी भी जुड़ी होती है कि वीर्य संग्रह की विधि पूरी तरह वैज्ञानिक, सुरक्षित और मानकीकृत हो। थोड़ी सी लापरवाही भी बड़ी संख्या में मादाओं के गर्भधारण को प्रभावित कर सकती है, जिससे आर्थिक नुकसान के साथ–साथ प्रजनन कार्यक्रम की विश्वसनीयता पर भी प्रतिकूल प्रभाव पड़ सकता है।

वीर्य संग्रह के दौरान यह सुनिश्चित किया जाना आवश्यक है कि शुक्राणुओं की जीवनीयता, गतिशीलता, झिल्ली अखंडता तथा आनुवंशिक स्थिरता सुरक्षित बनी रहे। इसके साथ ही यह भी ध्यान रखा जाना चाहिए कि संग्रह की प्रक्रिया से पशु को न्यूनतम शारीरिक एवं मानसिक तनाव हो, ताकि उसकी यौन क्रियाशीलता पर नकारात्मक प्रभाव न पड़े। बार–बार गलत विधि से वीर्य संग्रह करने पर नर पशु में यौन अरुचि, भय अथवा आक्रामक व्यवहार विकसित हो सकता है, जिससे भविष्य में वीर्य संग्रह और अधिक कठिन हो जाता है।

विभिन्न पशु प्रजातियों जैसे बैल, भैंसा, बकरा, भेड़, घोड़ा, सूअर एवं कुत्ते में शारीरिक बनावट, जननांगों की संरचना तथा यौन व्यवहार में पर्याप्त अंतर पाया जाता है। इसी कारण सभी पशुओं के लिए एक ही प्रकार की वीर्य संग्रह विधि उपयुक्त नहीं होती। किसी एक प्रजाति में जो विधि अत्यंत सफल और सुरक्षित मानी जाती है, वही विधि दूसरी प्रजाति में व्यवहारिक नहीं हो सकती। अतः पशु प्रजाति, नर पशु के स्वभाव, संग्रह के उद्देश्य तथा उपलब्ध संसाधनों को ध्यान में रखते हुए वीर्य संग्रह की उपयुक्त विधि का चयन करना आवश्यक होता है। यही वैज्ञानिक दृष्टिकोण सफल कृत्रिम गर्भाधान, उच्च गर्भधारण दर एवं स्थायी नस्ल सुधार की मजबूत आधारशिला है।

वीर्य संग्रह की विधियाँ

कृत्रिम योनि विधि

कृत्रिम योनि विधि को पशुओं में वीर्य संग्रह की सबसे वैज्ञानिक, सुरक्षित और प्राकृतिक विधि माना जाता है। इस विधि में विशेष रूप से डिजाइन की गई कृत्रिम योनि का उपयोग किया जाता है, जिसमें तापमान, दबाव तथा स्नेहन की व्यवस्था इस प्रकार की जाती है कि वह मादा पशु की प्राकृतिक योनि के समान अनुभव प्रदान करे। नर पशु को मादा या डमी मादा पर आरोहण करने दिया जाता है तथा स्खलन के समय लिंग को कृत्रिम योनि के भीतर निर्देशित किया जाता है। इस विधि से स्खलन पूरी तरह प्राकृतिक ढंग से होता है, जिससे वीर्य की गुणवत्ता उत्कृष्ट बनी रहती है।

यह विधि विशेष रूप से बैल, भैंसा, बकरा, भेड़ एवं घोड़े में व्यापक रूप से अपनाई जाती है। कृत्रिम योनि विधि से प्राप्त वीर्य में बाहरी प्रदूषण की संभावना न्यूनतम होती है तथा शुक्राणुओं की गतिशीलता, जीवनीयता एवं संरचनात्मक अखंडता उच्च स्तर की रहती है। हालांकि, इस विधि के सफल उपयोग के लिए नर पशु का पूर्व प्रशिक्षण, अनुभवी तकनीकी कर्मी तथा उपयुक्त संग्रह वातावरण आवश्यक होता है। अत्यधिक आक्रामक या अत्यधिक शर्मीले पशुओं में इस विधि को अपनाना कभी–कभी कठिन हो सकता है।

कृत्रिम योनि के विभिन्न भाग

कृत्रिम योनि के माध्यम से बकरों में वीर्य संग्रह दर्शाने वाला फोटोग्राफ

(सौजन्यः गोट सीमेन बायोलॉजी लैबोरेटरी बिहार पशु चिकित्सा महाविद्यालय बिहार पशु विज्ञान विश्वविद्यालय पटना

विद्युत स्खलन विधि

विद्युत स्खलन विधि उन परिस्थितियों में उपयोगी सिद्ध होती है, जहां कृत्रिम योनि विधि द्वारा वीर्य संग्रह संभव नहीं हो पाता। इस विधि में एक विशेष विद्युत उपकरण का उपयोग किया जाता है, जिसमें मलाशय के माध्यम से एक प्रोब प्रविष्ट कराकर नियंत्रित विद्युत उत्तेजना दी जाती है। यह उत्तेजना सहायक जनन ग्रंथियों तथा संबंधित तंत्रिकाओं को सक्रिय करती है, जिसके परिणामस्वरूप स्खलन होता है।

यह विधि अप्रशिक्षित, वृद्ध, घायल अथवा आक्रामक पशुओं में विशेष रूप से उपयोगी मानी जाती है। इसके अतिरिक्त, वन्य पशुओं से वीर्य संग्रह के लिए भी यह एक महत्वपूर्ण तकनीक है। हालांकि, इस विधि से प्राप्त वीर्य की गुणवत्ता कभी–कभी कृत्रिम योनि विधि की तुलना में कम हो सकती है। मूत्र मिश्रण की संभावना तथा पशु में अस्थायी तनाव इसके प्रमुख सीमित कारक हैं। इसलिए इस विधि का उपयोग सदैव प्रशिक्षित पशु चिकित्सक की देखरेख में किया जाना चाहिए।

इलेक्ट्रो–इजैक्युलेटर के विभिन्न भाग

हस्त विधि

हस्तमैथुन विधि में नर पशु के लिंग को हाथ द्वारा नियंत्रित उत्तेजना देकर स्खलन कराया जाता है। यह विधि मुख्य रूप से कुत्तों एवं सूअरों में अपनाई जाती है। कुत्तों में इस विधि का विशेष महत्व है, क्योंकि इससे वीर्य के विभिन्न अंशों को अलग–अलग संग्रहित किया जा सकता है, जो नैदानिक एवं अनुसंधान कार्यों के लिए उपयोगी होता है।

यह विधि अपेक्षाकृत सरल है और इसमें महंगे उपकरणों की आवश्यकता नहीं होती, किंतु इसके लिए पर्याप्त अनुभव, धैर्य तथा पशु व्यवहार की गहरी समझ आवश्यक होती है। सभी पशु प्रजातियों में यह विधि व्यवहारिक नहीं है और गलत तरीके से करने पर पशु में तनाव उत्पन्न हो सकता है।

योनि से वीर्य संग्रह विधि

इस विधि में प्राकृतिक मैथुन के पश्चात मादा पशु की योनि से वीर्य को एकत्र किया जाता है। यह विधि सामान्यतः अनुसंधान कार्यों तक सीमित रहती है, क्योंकि इसमें वीर्य के प्रदूषित होने की संभावना अधिक होती है। योनि स्राव, रक्त अथवा अन्य कोशिकीय तत्वों के मिश्रण से शुक्राणुओं की गुणवत्ता प्रभावित हो सकती है। व्यावसायिक कृत्रिम गर्भाधान कार्यक्रमों में इस विधि का उपयोग बहुत सीमित है।

कंडोम विधि

कंडोम विधि में प्राकृतिक मैथुन के दौरान नर पशु के लिंग पर विशेष कंडोम लगाया जाता है, जिससे स्खलन के समय वीर्य उसी में संग्रहित हो जाता है। यह विधि मुख्यतः घोड़े तथा कभी–कभी कुत्तों में प्रयोग की जाती है। यद्यपि स्खलन प्राकृतिक रूप से होता है, फिर भी तापमान नियंत्रण की कठिनाई एवं वीर्य गुणवत्ता में संभावित कमी के कारण इसका उपयोग सीमित रहता है।

पोस्टमॉर्टम वीर्य संग्रह विधि

पोस्टमॉर्टम वीर्य संग्रह विधि में मृत पशु के वृषण अथवा एपिडिडिमिस से शुक्राणु प्राप्त किए जाते हैं। यह विधि विशेष रूप से मूल्यवान, दुर्लभ अथवा संकटग्रस्त नस्लों के आनुवंशिक संरक्षण में महत्वपूर्ण भूमिका निभाती है। यदि मृत्यु के पश्चात सीमित समय के भीतर उपयुक्त तापमान एवं स्वच्छ परिस्थितियों में शुक्राणु निकाले जाएं, तो उन्हें सफलतापूर्वक संरक्षित कर भविष्य में उपयोग किया जा सकता है।

निष्कर्ष

अतः यह स्पष्ट है कि पशुओं में वीर्य संग्रह की विभिन्न विधियाँ प्रजनन प्रबंधन का एक अत्यंत महत्वपूर्ण और आधारभूत अंग हैं। प्रत्येक विधि की अपनी उपयोगिता सीमाएँ तथा व्यावहारिक महत्व होता है और किसी एक विधि को सभी परिस्थितियों के लिए सर्वोत्तम नहीं माना जा सकता। कृत्रिम योनि विधि को सबसे अधिक वैज्ञानिक सुरक्षित और प्राकृतिक माना जाता है क्योंकि इससे प्राप्त वीर्य की गुणवत्ता सामान्यतः श्रेष्ठ होती है। वहीं विद्युत स्खलन हस्तमैथुन तथा अन्य वैकल्पिक विधियाँ विशेष परिस्थितियों में उपयोगी सिद्ध होती हैं जैसे अप्रशिक्षित वृद्ध घायल या वन्य पशुओं से वीर्य संग्रह करना।

वीर्य संग्रह की विधि का चयन करते समय पशु की प्रजाति, स्वभाव, प्रशिक्षण स्तर स्वास्थ्य स्थिति तथा संग्रह के उद्देश्य को ध्यान में रखना आवश्यक है। इसके साथ ही यह भी महत्वपूर्ण है कि संग्रह की प्रक्रिया के दौरान पशु को न्यूनतम शारीरिक एवं मानसिक तनाव हो जिससे उसकी यौन क्रियाशीलता और भविष्य की प्रजनन क्षमता प्रभावित न हो। स्वच्छता उचित उपकरणों का उपयोग और प्रशिक्षित मानव संसाधन वीर्य संग्रह की सफलता के प्रमुख आधार हैं। निष्कर्षतः वैज्ञानिक दृष्टिकोण व्यावहारिक अनुभव और पशु कल्याण के समन्वय से ही उपयुक्त वीर्य संग्रह विधि का चयन संभव है। सही विधि द्वारा प्राप्त गुणवत्तापूर्ण वीर्य ही सफल कृत्रिम गर्भाधान उच्च गर्भधारण दर और स्थायी नस्ल सुधार कार्यक्रमों की मजबूत आधारशिला सिद्ध होता है।

मानव जीवन में पशुपालन का महत्व

अजीत कुमार

परजीवी विज्ञान विभाग, बिहार पशु चिकित्सा महाविद्यालय, बिहार पशु विज्ञान विश्वविद्यालय, पटना

भारत एक कृषि प्रधान देश है। इसकी 60 प्रतिशत आबादी कृषि पर निर्भर है। भारत में कृषि और पशुपालन एक–दूसरे के पूरक है । भारत की कृषि पर निर्भरता जितनी अधिक है उतना ही महत्वपूर्ण है पशुपालन, बल्कि हम यह कहें तो अतिश्योक्ति न होगी कि भारत में पहले पशुपालन ही मुख्य आय का स्त्रोत था। द्वापर में गाय को गौधन के रूप में मान्यता थी । एक प्रचलित कहानी है कि महाराज दुपद और आचार्य द्रोण एक ही गुरु के शिष्य थे दोनों ने बचपन में कसमें खाई थी हमारे पास जो भी है वह एक–दूसरे का है. लेकिन जब द्रोणाचार्य एक गाय मागने दुपद के पास गये तो उन्होंने बचपन की बातें कह कहकर मना कर दिया यही गाय फिर द्रोणाचार्य ने कुरुवंशियों से गुरुदक्षिणा में मांगी थी । अतः मेरे कहने का तात्पर्य यह है कि प्राचीन समय में पशुपालन को महत्व दिया जाता था। जिसके पास जितना अधिक पशुधन होता था यह उतना ही अधिक समृद्धशाली माना जाता था इस प्रकार प्राचीन भारत में पशु सुदृढ आर्थिक व्यवस्था का आधार था राजा के पास गाय के अतिरिक्त हाथी, घोडे, रथ खींचने वाले बैल भी होते थे जो उसकी शक्ति और समृद्धि के सूचक थे। आज हमें पुनः पशुपालन पर जोर देने की आवश्यकता है। पशुपालन से निकले अपशिष्ट गोबर, गौमूत्र का उपयोग करके जैविक खाद तैयार की जा सकती है, जो कि फसल के लिए अत्यत लाभदायक है, और फसल से हमें चारे के रुप में भूसा प्राप्त होता है, फसलों में उगे खरपतवार का उपयोग भी हम निंदाई करके चारे के रूप में कर सकते है जिससे फसल को खरपतवार से मुक्ति मिलेगी। दूसरी तरफ पशुओं को चारा प्राप्त हो जायेगा, गाय से निकले गौमूत्र का उपयोग हम कीटनाशक के रूप में व गौमूत्र, गोबर का उपयोग अमृत खाद में कर सकते हैं जिससे खेती की लागत कम होगी और खेती लाभ का बंचा बन सकेंगी।

मानव सभ्यता के विकास के साथ ही पशुपालन का गहरा संबंध रहा है। आदिम काल से ही मनुष्य ने अपनी आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए पशुओं को पालतू बनाना शुरू किया था। मानव सभ्यता के विकास के साथ ही पशुपालन का गहरा संबंध रहा है। आदिम काल से ही मनुष्य ने अपनी आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए पशुओं को पालतू बनाना शुरू किया था। भारत का

पशुपालन क्षेत्र केवल कृषि का सहायक नहीं है, बल्कि यह ग्रामीण जीवनयापन (rural livelihood), पोषण सुरक्षा (nutritional security) और महिला सशक्तिकरण (Women empowerment) का एक महत्वपूर्ण आधार है। यह क्षेत्र सामाजिक–आर्थिक विकास (socio & economic development) के साथ–साथ सांस्कृतिक, रणनीतिक और जलवायु लचीलेपन में भी अहम भूमिका निभाता है। कोविड–19 महामारी के दौरान जब अन्य क्षेत्र संघर्ष कर रहे थे, तब पशुपालन क्षेत्र ने गंभीर लचीलापन दिखाया और ग्रामीण आय को बनाए रखा। आज के आधुनिक युग में पशुपालन केवल जीवन निर्वाह का साधन नहीं, बल्कि ग्रामीण अर्थव्यवस्था और मानव पोषण की रीढ़ बन चुका है।

भारत में पशुपालन का आर्थिक महत्व

पशुपालन, जो कृषि की एक आधारशिला है, सदियों के दौरान अत्यधिक विकसित हुआ है। लगभग 10,000 ईसा पूर्व पशुओं के पालतूकरण से लेकर वर्तमान समय तक, पशुपालन ने मानव समाज में भोजन, श्रम और सहचर्य प्रदान करके महत्वपूर्ण भूमिका निभाई है। 21वीं सदी में पशुपालन के समक्ष नई चुनौतियाँ और अवसर उपस्थित हैं, विशेष रूप से उत्पादन, पशु कल्याण और सततता के बीच संतुलन बनाए रखने की दृष्टि से। ऐतिहासिक रूप से, पशुपालन का उद्देश्य विभिन्न आवश्यकताओं जैसे भोजन, श्रम और सहचर्य–के लिए पशुओं का पालतूकरण और प्रजनन करना था। सबसे पहले कुत्तों को पालतू बनाया गया, इसके बाद भेड, बकरी और फिर घोडें तथा बैल जैसे बडें पशु पालतू बनाए गए। शिकारी–संग्राहक जीवनशैली से पालतू पशुओं पर आधारित जीवनशैली की ओर यह परिवर्तन स्थायी बस्तियों की स्थापना का कारण बना और मानव इतिहास में एक महत्वपूर्ण मोड सिद्ध हुआ।

भारत विश्व का सबसे बड़ा पशुधन जनसंख्या वाला देश है। भारत विश्व का सबसे बडा दूध उत्पादक देश है और दूध का उत्पादन 247.87 मिलियन टन तक 2024–25 में पहुंच चुका है। विश्व के कुल उत्पादन का लगभग 25 प्रतिशत योगदान भारत का है। एफएओ के अनुसार, भारत दूध उत्पादन में विश्व में प्रथम, अंडा उत्पादन में द्वितीय तथा मांस उत्पादन में चतुर्थ स्थान पर है। भैंस के मांस में पहला, और बकरी के मांस में भारत का स्थान दूसरा है ।

भारत का डेयरी उद्योग विश्व में सबसे बड़ा है । यह उद्योग राष्ट्रीय अर्थव्यवस्था में 5 प्रतिशत का योगदान देता है और 80 मिलियन से अधिक किसानों को प्रत्यक्ष रूप से समर्थन प्रदान करता है। देश के डेयरी उद्योग में कार्यरत अधिकांश श्रमिक महिलाएं हैं। भारत के पास विश्व की सबसे

बड़ी पशुधन आबादी है, जिसमें कुल 536.76 मिलियन पशु शामिल हैं, जिनमें 303.76 मिलियन गोवंश और 148.8 मिलियन बकरियां शामिल हैं। भारत में डेयरी उत्पादों के प्रमुख उत्पादन क्षेत्र उत्तर प्रदेश, महाराष्ट्र, हिमाचल प्रदेश, मध्य प्रदेश, पंजाब, राजस्थान और तमिलनाडु हैं। भारतीय डेयरी उद्योग तीव्र गति से बढ़ रहा है, जिसका कारण देशभर में तरल दूध और डेयरी उत्पादों की बढ़ती खपत तथा स्वास्थ्य के प्रति जागरूक उपभोक्ताओं की बढ़ती मांग है।

बिहार में पशुपालन की स्थिति

बिहार कृषि प्रधान राज्य है, जहाँ पशुपालन ग्रामीण अर्थव्यवस्था में विशेष महत्व रखता है। लगभग 70 प्रतिशत ग्रामीण परिवार कृषि के साथ–साथ पशुपालन से भी जुडे हैं। बिहार का पशुपालन आज राष्ट्रीय स्तर पर बेहतर प्रदर्शन कर रहा है । भारत के कुल दूध उत्पादन में बिहार का योगदान 5.41 प्रतिशत है जबकि मांस उत्पादन में राज्य की हिस्सेदारी 4 प्रतिशत है एवं अंडे उत्पादन में बिहार का योगदान 2.54 प्रतिशत है। यह आंकडे दर्शाते हैं कि बिहार न केवल अपने लोगों के पोषण में बल्कि देश की खाद्य सुरक्षा में भी योगदान दे रहा है। बिहार में पशुधन व्यापार का मूल्य लगभग 90,000 से 1,00,000 करोड रुपये तक पहुंच चुका है, जो ग्रामीण अर्थव्यवस्था की मजबूती का संकेत है।

पशुपालन निम्नलिखित तरीकों से मानव जीवन को लाभ पहुँचाता है:

1. दुग्ध उत्पाद

गाय, बकरी और भेड जैसे पशु दूध तथा दही, पनीर, मक्खन आदि दुग्ध उत्पादों के प्रमुख स्रोत हैं।

2. मांस

गाय, भैंस, सूअर और बकरी जैसे पशुओं को मांस के लिए पाला जाता है। उनका मांस आहार प्रोटीन का अच्छा स्रोत होता है।

3. भूमि प्रबंधन

कभी–कभी पशुओं को खेतों में चराया जाता है जिससे खरपतवार नियंत्रण में सहायता मिलती है। आग–संभावित क्षेत्रों में बकरी और भेड सूखी झाडियाँ खा लेती हैं, जिससे आग लगने का खतरा कम होता है।

4. रेशा (Fibre)

पशु ऊन और चमडा जैसे रेशे भी प्रदान करते हैं। उदाहरण के लिए, भेड से ऊन और ऊँट से चमडा प्राप्त किया जाता है।

5. खाद (Manure)

पशुओं का मल, रक्त और हड्डियाँ खाद के रूप में उपयोग की जाती हैं। इससे फसल उत्पादन बढता है। खाद का उपयोग ईंधन तथा दीवारों और फर्श की लिपाई में भी किया जाता है।

6. श्रम (Labour)

पशु मानव–रहित श्रम का स्रोत हैं। उनका उपयोग खेत जोतने, सामान ढोने और सैन्य कार्यों में किया जाता है। जैसे—घोडें याक और गधे।

वर्तमान समय में विश्वभर में पशुपालन के चार प्रमुख प्रकार प्रचलित हैंः

1. दुग्ध उत्पादन (Dairy Farming)

दुग्ध उत्पादन कृषि की वह पद्धति है जिसमें दूध के दीर्घकालीन उत्पादन पर ध्यान दिया जाता है। इस दूध को बाद में दही, पनीर, योगर्ट, मक्खन, क्रीम आदि दुग्ध उत्पादों में परिवर्तित किया जाता है। इसमें गाय, भैंस, भेड और बकरी जैसे दुधारू पशुओं का प्रबंधन किया जाता है। इन पशुओं को रोगों से बचाया जाता है और उनकी नियमित जाँच पशु चिकित्सकों द्वारा की जाती है। एक स्वस्थ पशु शारीरिक, मानसिक और सामाजिक रूप से स्वस्थ होता है। दूध हाथों से या मशीनों द्वारा निकाला जाता है। इसके बाद दूध को संरक्षित कर औद्योगिक स्तर पर दुग्ध उत्पादों में बदला जाता है, जिन्हें व्यावसायिक उद्देश्यों के लिए उपयोग किया जाता है।

2. मुर्गीपालन (Poultry Farming)

मुर्गीपालन में पक्षियों का पालन और प्रजनन व्यावसायिक उद्देश्यों के लिए किया जाता है। बत्तख, मुर्गी, हंस, कबूतर और टर्की जैसे पक्षियों को अंडों और मांस के लिए पालतू बनाया जाता है। स्वस्थ भोजन प्राप्त करने के लिए पक्षियों की अच्छी देखभाल और रोग–मुक्त वातावरण बनाए रखना आवश्यक होता है। अंडे और मांस प्रोटीन के समृद्ध स्रोत होते हैं।स्वच्छता और साफ–सफाई का विशेष ध्यान रखा जाता है। पक्षियों का मल खाद (मैन्योर) के रूप में उपयोग किया जाता है, जिससे मिट्टी की उर्वरता बढती है। मुर्गीपालन बडी संख्या में लोगों को रोजगार प्रदान करता है और किसानों की आर्थिक स्थिति को मजबूत करता है।

3. मत्स्य पालन (Fish Farming)

मत्स्य पालन में मछलियों को तालाबों या बंद टैंकों में व्यावसायिक उद्देश्य से पाला जाता है। मछली और मछली–प्रोटीन की मांग लगातार बढ रही है। सैल्मन, कैटफिश, कॉड और तिलापिया जैसी मछलियाँ मत्स्य फार्म में पाली जाती हैं।

4. मधुमक्खी पालन (Bee Farming / Apiculture)

मधुमक्खी पालन वह प्रक्रिया है जिसमें मनुष्य द्वारा बनाए गए छत्तों में मधुमक्खियों की कॉलोनियाँ रखी जाती हैं। शहद देने वाली मधुमक्खियों को बडें पैमाने पर पाला जाता है। मधुमक्खियों को शहद, मोम और फूलों के परागण के लिए पालतू बनाया जाता है। जिस स्थान पर मधुमक्खियाँ रखी जाती हैं, उसे एपियरी (Apiary) या मधुमक्खी गृह कहा जाता है।

पशुपालन से पोषण और खाद्य सुरक्षा

पशुपालन न केवल आर्थिक रूप से बल्कि पोषण स्तर को ऊँचा करने में भी योगदान देता है। मानव स्वास्थ्य के लिए संतुलित आहार अत्यंत आवश्यक है, और पशुजन्य उत्पाद (Animal Products) इसमें महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं। दूध, दही, पनीर, अंडे, मांस आदि उत्पाद प्रोटीन, कैल्शियम तथा विटामिन का प्रमुख स्रोत हैं, जो बच्चों, युवा, वयस्क तथा बुढों सबके स्वास्थ्य के लिये आवश्यक हैं। विकासशील देशों में बच्चों और महिलाओं में कुपोषण की समस्या को दूर करने में अंडे और दूध का सेवन एक प्रभावी हथियार साबित हुआ है।

आर्थिक सशक्तिकरण और ग्रामीण विकासः

पशुपालन भारतीय अर्थव्यवस्था, विशेषकर ग्रामीण क्षेत्र में आजीविका का एक प्रमुख आधार है।

- **स्थिर आय का साधनः** कृषि अक्सर मानसून पर निर्भर होती है, लेकिन पशुपालन किसानों को वर्ष भर नियमित आय प्रदान करता है। संकट के समय पशुओं को चलता–फिरता बैंक (Moving Bank) माना जाता है, जिन्हें बेचकर किसान अपनी तत्काल आर्थिक जरूरतें पूरी कर सकते हैं।
- **जीडीपी में योगदानः** भारत की कृषि जीडीपी में पशुधन क्षेत्र का योगदान लगभग 30 प्रतिशत है, जो इसकी आर्थिक महत्ता को दर्शाता है।

महिला सशक्तिकरण व सामाजिक लाभ

पशुपालन ग्रामीण क्षेत्र में महिलाओं के लिये एक सशक्त रोजगार स्रोत बन चुका है। क्योंकि पशुपालन काम के लिए प्रशिक्षण या भारी निवेश की आवश्यकता नहीं होती, इससे महिलाएँ आसानी से व्यवसाय में सहभागी बन पाती हैं और अपनी आर्थिक स्थिति मजबूत करती हैं। पशुपालन से जुडी गतिविधियाँकृदूध व्यापार, पोल्ट्री, मत्स्य पालन, बकरी पालन एवं अन्य कृषि सामग्री की तरह ही आने वाली पीढियों के लिये रोजगार उत्पन्न करती हैं। यह छोटे व सीमांत किसानों तथा भूमिहीन मजदूरों के लिये आय का प्राथमिक स्रोत हैं। पशुपालन तथा संबंधित क्षेत्र

ग्रामीण जनता की आय का महत्वपूर्ण स्रोत हैं और लाखों लोगों को प्रत्यक्ष तथा अप्रत्यक्ष रोजगार प्रदान करते हैं। लगभग 20.5 मिलियन लोग पशुपालन गतिविधियों से जुडें हैं । डेयरी और मुर्गी पालन जैसे कार्यों में महिलाओं की भागीदारी 70 प्रतिशत से अधिक है। इससे वे आर्थिक रूप से स्वतंत्र बनती हैं और परिवार के निर्णय लेने की प्रक्रिया में उनकी भूमिका बढ़ती है।

कृषि और पर्यावरण में भूमिका

पशुपालन और खेती एक–दूसरे के पूरक हैं। बिना पशुओं के जैविक खेती की कल्पना करना कठिन है। देश के कृषि उत्पादन में पशुपालन का 30 प्रतिशत योगदान है ग्रामीण क्षेत्र में पशुपालन से विभित्र रूप में रोजगार मिलता है जैसे पशुओं के बच्चों का लालन–पालन करके बेचना, कृषि के लिए बैल तैयार करके, विभिन्न प्रकार के दुधारू पशुओं को पालकर दुग्ध तथा दुग्ध उत्पादन प्राप्त करके, जीवित पशुओं के मरने से चमडा, पशु हड्डियां उद्योगों के लिए प्राप्त होती है। पशुओं से प्राप्त गोबर को फसल अवशेषों के साथ मिलाकर कंपोस्ट खाद बनाकर कृषि में प्रयोग कर सकते हैं इसके अलावा पशुओं से डेयरी उद्योग चर्म उद्योग, सींगों से बनने वाले वाद्य यंत्र, कधी, शोपीस आदि प्राप्त होते है आज पशुओं से दुग्ध उत्पादन की अतिरिक्त गाय से प्राप्त गोमूत्र एवं गाय गोबर दवाइयों के रूप में प्रयोग हो रहे हैं। पशुओं से प्राप्त ताजा गोबर से गोबर गैस प्लाट में प्रयोग करके अच्छी सडी गोबर खाद तथा रसोई गैस प्राप्त की जा सकती है प्रयोग में यह पाया गया है कि बायोगैस संयंत्र 35 डिग्री पर सबसे अच्छे ढंग से कार्य करता है बायोगैस में 60 से 65 प्रतिशत मीथेन 35 से 40 प्रतिशत कार्बन डाइऑक्साइड और थोडी मात्रा में हाइड्रोजन सल्फाइड होता है 30 से 35 किलोग्राम गोबर की मात्रा से एक घन मीटर गैस पैदा होती है जो 5–6 सदस्यों की परिवार के लिए खाना पकाने के ईंधन की आवश्यकता को पूर्ति करता है। गाय के गोबर से घर लीपने तथा उपले जलाने से रोग कीटाणुओं का नाश होता है. पशु पशु हमारे घरों में पर्यावरण संरक्षण का भी कार्य करते हैं घर से निकलने वाले छिलके बची हुई रोटी सब्जी एवं अन्य खाद्य पदार्थ फेंकने के बजाय हम पशुओं को खिला देते हैं। अतः हम कह सकते हैं कि पर्यावरण और उसकी सुरक्षा का चक्र पशुओं की सुरक्षा के बिना पूरा नहीं होता अगर किसी पशु की जाती या प्रजाति नष्ट हो जाती है तो पर्यावरण का संतुलन ही बिगड जाता है इस प्रभाव मनुष्य सहित समस्त जीवन जतु और वनस्पति जगत पर भी पडता है। अतः हमारा कर्तव्य कि हम पशुओं की सुरक्षा करें। और पशुपालन को बढावा दें।

सहायक उद्योग और रोजगार सृजन

पशुपालन क्षेत्र कई अन्य बड़े उद्योगों के लिए कच्चे माल की आपूर्ति करता है, जिससे लाखों

लोगों को रोजगार मिलता है।

उद्योग का नाम	पशुजन्य कच्चा माल
चर्म उद्योग (Leather)	खाल और चमड़ा
वस्त्र उद्योग	ऊन और रेशम
औषधि उद्योग	विभिन्न हार्मोन और औषधीय अर्क
खाद्य प्रसंस्करण	मांस, दूध और अंडे

इन उद्योगों के माध्यम से न केवल स्थानीय रोजगार पैदा होता है, बल्कि अंतरराष्ट्रीय बाजार में उत्पादों का निर्यात करके विदेशी मुद्रा भी अर्जित की जाती है।

पशुपालन विकास, चुनौतियाँ और भविष्य

पशुपालन, जो कृषि की एक आधारशिला है, सदियों के दौरान अत्यधिक विकसित हुआ है। लगभग 10,000 ईसा पूर्व पशुओं के पालतूकरण से लेकर वर्तमान समय तक, पशुपालन ने मानव समाज में भोजन, श्रम और सहचर्य प्रदान करके महत्वपूर्ण भूमिका निभाई है। 21वीं सदी में पशुपालन के समक्ष नई चुनौतियाँ और अवसर उपस्थित हैं, विशेष रूप से उत्पादन, पशु कल्याण और सततता के बीच संतुलन बनाए रखने की दृष्टि से।

आज पशुपालन कई आधुनिक चुनौतियों का सामना कर रहा है :

- सततता (Sustainability) : 2050 तक वैश्विक जनसंख्या के 9–10 अरब तक पहुँचने का अनुमान है। इससे पशु उत्पादों की मांग में निरंतर वृद्धि हो रही है, जिससे पर्यावरणीय संतुलन बनाए रखने हेतु सतत पशुपालन पद्धतियों को अपनाना अनिवार्य हो गया है।
- पशु कल्याण (Animal Welfare) : पशुओं के साथ मानवीय व्यवहार की आवश्यकता के प्रति जागरूकता बढ रही है। सर्टिफाइड ह्यूमेन जैसे संगठनों ने पशु कल्याण मानकों को बढावा देने में महत्वपूर्ण योगदान दिया है।
- जलवायु परिवर्तन (Climate Change) : पशुपालन क्षेत्र ग्रीनहाउस गैस उत्सर्जन में योगदान देता है, इसलिए जलवायु परिवर्तन को कम करने के लिए सतत पशुपालन पद्धतियाँ अपनाना अत्यंत आवश्यक है।
- उत्पादन, पशु कल्याण और सततता के बीच संतुलन : सतत पशुपालन में संसाधनों का जिम्मेदार उपयोग, पर्यावरण–अनुकूल तकनीकों का प्रयोग और पशुओं के साथ मानवीय व्यवहार शामिल है। चरागाह आधारित प्रणालियाँ और चक्रीय चराई (Rotational Grazing) जैसी तकनीकें न केवल पशुओं के स्वास्थ्य में सुधार करती हैं, बल्कि मिट्टी की गुणवत्ता और जैव विविधता को भी बढाती हैं। ये पद्धतियाँ ग्रीनहाउस गैस उत्सर्जन को कम करने और

जलवायु सहनशीलता ।

- पशुपालन को समझना : पशुपालन पशुधन (पालतू जानवरों) के पालन–पोषण, प्रजनन और देखभाल की प्रक्रिया है। यह एक ऐसी विधि है जिसमें लाभ प्राप्त करने के उद्देश्य से पशुओं के आनुवंशिक गुणों और व्यवहार को विकसित और सुधारा जाता है। बहुत बडी संख्या में किसान अपनी आजीविका के लिए पशुपालन पर निर्भर हैं।
- पशु हमें अनेक प्रकार के पोषण–युक्त खाद्य पदार्थ प्रदान करते हैं, इसलिए उनकी उचित देखभाल और ध्यान देना अत्यंत आवश्यक होता है।
- भोजन की बढती मांग को पूरा करने के लिए पशुओं का व्यावसायिक स्तर पर प्रजनन किया जाता है। गाय, भैंस और बकरी जैसे पशुओं से प्राप्त दुग्ध उत्पाद प्रोटीन से भरपूर होते हैं। ऐसे पशुओं को दुधारू पशु (Milch Animals) कहा जाता है क्योंकि वे हमें दूध प्रदान करते हैं।
- एक अन्य समूह में मुर्गी, बत्तख और हंस जैसे पक्षी आते हैं, जो हमें अंडे देते हैं। अंडे भी प्रोटीन का अच्छा स्रोत होते हैं।
- मुर्गी, बत्तख, बैल, बकरी, सूअर आदि पशुओं को मांस के लिए पाला जाता है। इन घरेलू पशुओं के अलावा पोषण के अन्य स्रोत भी हैं, जैसे समुद्री जीव। समुद्री भोजन अत्यधिक पौष्टिक होता है और इसमें वसा, प्रोटीन, विटामिन तथा खनिज प्रचुर मात्रा में पाए जाते हैं।
- पशुओं की देखभाल, प्रजनन और प्रबंधन आदि कार्यों की निगरानी पशुपालन विभाग द्वारा की जाती है। पशुपालन एक बडे पैमाने का व्यवसाय है। पशुओं को विशेष रूप से बनाए गए खेतों या क्षेत्रों में पाला, संरक्षित और आश्रय दिया जाता है। पशुपालन में मुर्गीपालन, दुग्ध फार्म, मधुमक्खी पालन (एपिकल्चर), मत्स्य पालन (एक्वाकल्चर) आदि शामिल हैं।
- पशु आश्रय, पशु चिकित्सा सेवाओं की कमी ।
- पशुधन के लिए पोषण तथा नस्ल सुधार में सीमित संसाधन ।
- राज्य स्तर पर प्रशिक्षण और तकनीकी सहायता का अभाव।

समाधान / सुझाव

- शिक्षण एवं प्रशिक्षण केंद्रों का विकास ।
- पशु स्वास्थ्य व टीकाकरण सेवाओं का सुदृढ नेटवर्क ।
- बाजार हेतु बेहतर सप्लाई चेन विकसित करना ।
- नवाचार एवं तकनीकी सुधार के लिए सरकारी योजनाओं को बढावा देना ।

निष्कर्ष

पशुपालन सिर्फ आय का स्रोत नहीं बल्कि यह पोषण, रोजगार, महिला सशक्तिकरण, ग्रामीण विकास एवं सामाजिक स्थिरता का आधार है। भारत की अर्थव्यवस्था में यह क्षेत्र बढते योगदान के साथ ग्रामीण कल्याण का मजबूत स्तंभ बनता जा रहा है। बिहार जैसे कृषि प्रधान राज्य में पशुपालन की भूमिका विशेषकर महत्वपूर्ण है, जहाँ यह लाखों लोगों के जीवन स्तर को बेहतर बनाने में योगदान दे रहा है। यदि हम आधुनिक तकनीक और पशु कल्याण के बीच संतुलन बनाकर चलें, तो पशुपालन भविष्य में वैश्विक खाद्य सुरक्षा का सबसे मजबूत स्तंभ बनकर उभरेगा।

वीर्य संग्रह, प्रसंस्करण, संरक्षण और कोल्ड चेन अनुरक्षण

[1]आलोक कुमार एवं [2]जे.के. प्रसाद

[1] सहायक प्राध्यापक, वेटरनरी गायनेकोलॉजी एण्ड ऑब्स्टेट्रिक्स, [2]भूतपूर्व अधिष्ठाता,बिहार पशु चिकित्सा महाविद्यालय, बिहार पशु विज्ञान विश्वविद्यालय, पटना एवं प्रधान एवं वैज्ञानिक, आई.भी.आर.आई।

परिचय

आज के समय में पशुपालन केवल पशुओं की संख्या बढ़ाने तक सीमित नहीं रह गया है। अब ध्यान इस बात पर है कि पशु अच्छे नस्ल के हों, ज्यादा दूध दें, जल्दी बढ़ें, कम बीमार पड़ें और लंबे समय तक उत्पादक रहें। इन सभी लक्ष्यों को पूरा करने में कृत्रिम गर्भाधान की बहुत बड़ी भूमिका है। कृत्रिम गर्भाधान तभी सफल हो सकता है जब इस्तेमाल किया गया वीर्य अच्छी गुणवत्ता का हो। यही कारण है कि वीर्य संग्रह, उसका सही तरीके से प्रसंस्करण, सुरक्षित संरक्षण और पूरी प्रक्रिया में कोल्ड चेन को बनाए रखना बहुत जरूरी हो जाता है।

वीर्य की गुणवत्ता केवल नर पशु की नस्ल या उम्र पर ही निर्भर नहीं करती, बल्कि इस बात पर भी निर्भर करती है कि वीर्य किस माहौल में और किस तरीके से लिया गया, उसे कैसे संभाला गया, किस तापमान पर रखा गया और किस सावधानी से मादा में उपयोग किया गया। यदि इन चरणों में कहीं भी लापरवाही हुई, तो अच्छे से अच्छे वीर्य से भी अपेक्षित गर्भधारण नहीं हो पाएगा। इसलिए यह पूरा विषय फील्ड में काम करने वाले पशु चिकित्सकों, तकनीशियनों और किसानों सभी के लिए बहुत महत्वपूर्ण है।

1. वीर्य संग्रह

वीर्य संग्रह पूरी प्रक्रिया का पहला और सबसे नाजुक चरण होता है। अगर यहीं गलती हो गई, तो आगे किया गया सारा काम बेकार हो सकता है। वीर्य संग्रह का मतलब केवल वीर्य लेना नहीं है, बल्कि ऐसा वीर्य लेना है जिसमें शुक्राणु जीवित हों, तेज चलने वाले हों और स्वस्थ हों।

1.1 वीर्य संग्रह से पहले तैयारी

वीर्य संग्रह से पहले नर पशु का स्वस्थ होना बहुत जरूरी है। पशु को संतुलित आहार, साफ पानी, खुली जगह और तनाव–मुक्त माहौल मिलना चाहिए। बीमार, कमजोर या बहुत ज्यादा थका हुआ पशु अच्छा वीर्य नहीं देता। संग्रह से पहले पशु को अचानक डराना, मारना या जोर–जबरदस्ती करना गलत है, इससे वीर्य की गुणवत्ता गिर जाती है।

संग्रह स्थल साफ, शांत और फिसलन–रहित होना चाहिए। आसपास ज्यादा शोर–शराबा नहीं होना चाहिए। तकनीशियन को आत्मविश्वास के साथ काम करना चाहिए, क्योंकि पशु इंसान के व्यवहार को जल्दी महसूस कर लेता है।

वीर्य प्रसंस्करण

वीर्य प्रसंस्करण कृत्रिम गर्भाधान की पूरी श्रृंखला का वह चरण है, जहाँ यह तय होता है कि संग्रहित वीर्य वास्तव में उपयोग योग्य है या नहीं। कई बार नर पशु से वीर्य अच्छी मात्रा में प्राप्त हो जाता है, लेकिन यदि उसका सही ढंग से प्रसंस्करण नहीं किया गया, तो वह वीर्य गर्भाधान में सफल नहीं हो पाता। इसलिए यह समझना आवश्यक है कि वीर्य प्रसंस्करण केवल एक प्रयोगशाला कार्य नहीं है, बल्कि यह वैज्ञानिक सोच, अनुभव और सावधानी का संयुक्त परिणाम है। वीर्य संग्रह के तुरंत बाद उसे खुले वातावरण में अधिक समय तक नहीं रखना चाहिए। अधिक गर्मी, ठंडी हवा, धूल या सीधी रोशनी शुक्राणुओं को नुकसान पहुँचा सकती है। इसलिए संग्रह के तुरंत बाद वीर्य को साफ ढके हुए कंटेनर में प्रयोगशाला तक लाया जाता है। प्रयोगशाला में सबसे पहले वीर्य की बाहरी जाँच की जाती है, जिसमें उसकी मात्रा, रंग और गंध पर ध्यान दिया जाता है। सामान्य वीर्य हल्का सफेद या दूधिया रंग का होता है और उसमें किसी प्रकार की बदबू नहीं होनी चाहिए। इसके बाद सूक्ष्मदर्शी की सहायता से वीर्य की आंतरिक गुणवत्ता की जाँच की जाती है। इसमें शुक्राणुओं की चाल देखी जाती है, जिसे आम भाषा में "चलने की ताकत" कहा जाता है। जो शुक्राणु सीधे और तेज गति से आगे बढ़ते हैं, उन्हें अच्छा माना जाता है। इसके साथ ही जीवित और मृत शुक्राणुओं का अनुपात देखा जाता है। यदि मृत शुक्राणुओं की संख्या अधिक हो, तो ऐसे वीर्य का उपयोग नहीं किया जाता। वीर्य प्रसंस्करण के दौरान सबसे महत्वपूर्ण कार्य होता है एक्सटेंडर मिलाना। एक्सटेंडर एक पोषक घोल होता है, जो शुक्राणुओं को ऊर्जा देता है और उन्हें ठंड या जमाने से होने वाले नुकसान से बचाता है। एक्सटेंडर मिलाते समय यह ध्यान रखना बहुत जरूरी है कि वीर्य और एक्सटेंडर का तापमान लगभग समान हो। अचानक तापमान बदलने से शुक्राणुओं को थर्मल शॉक लग सकता है, जिससे वे निष्क्रिय हो जाते हैं।

एक्सटेंडर का महत्व और उपयोग

आम भाषा में कहा जाए तो एक्सटेंडर शुक्राणुओं के लिए भोजन और सुरक्षा कवच दोनों का काम करता है। प्राकृतिक रूप से वीर्य में पोषण सीमित मात्रा में होता है, जो कुछ समय बाद समाप्त हो जाता है। यदि वीर्य को बिना एक्सटेंडर के रखा जाए, तो शुक्राणु जल्दी कमजोर होकर मर जाते हैं। इसलिए एक्सटेंडर मिलाना अनिवार्य होता है।

एक्सटेंडर में सामान्यतः शर्करा, बफर, एंटीबायोटिक और कभी–कभी अंडे की जर्दी या दूध जैसे तत्व होते हैं। शर्करा शुक्राणुओं को ऊर्जा देती है, बफर पीएच को संतुलित रखता है और एंटीबायोटिक बैक्टीरिया को बढ़ने से रोकते हैं। अंडे की जर्दी या दूध ठंड और जमने के दौरान शुक्राणुओं की झिल्ली की रक्षा करते हैं। एक्सटेंडर मिलाते समय सबसे बड़ी गलती जो अक्सर फील्ड में होती है, वह है जल्दबाजी। एक्सटेंडर को धीरे–धीरे, थोड़ी–थोड़ी मात्रा में मिलाना चाहिए। यदि एक साथ ज्यादा एक्सटेंडर डाल दिया जाए, तो वीर्य पतला हो सकता है और शुक्राणुओं की चाल कम हो सकती है। सही अनुपात में एक्सटेंडर मिलाने से एक स्खलन से कई डोज तैयार किए जा सकते हैं, जिससे एक ही नर पशु का अधिकतम उपयोग संभव होता है।

वीर्य संरक्षण

वीर्य संरक्षण का उद्देश्य यह सुनिश्चित करना है कि वीर्य लंबे समय तक उपयोग योग्य बना रहे। यदि वीर्य का तुरंत उपयोग नहीं किया जाना है, तो उसे सुरक्षित रखना आवश्यक होता है। संरक्षण की विधि इस बात पर निर्भर करती है कि वीर्य का उपयोग कितने समय बाद किया जाएगा।

अल्पकालिक संरक्षण में वीर्य को फ्रिज में चार से पाँच डिग्री तापमान पर रखा जाता है। इस तापमान पर शुक्राणु धीमी गति से चलते हैं और ऊर्जा की खपत कम होती है। इस तरह वीर्य एक से तीन दिन तक उपयोग योग्य रह सकता है। हालांकि इस दौरान तापमान में बार–बार बदलाव नहीं होना चाहिए। दीर्घकालिक संरक्षण के लिए वीर्य को तरल नाइट्रोजन में जमा दिया जाता है। इसे आम भाषा में "वीर्य फ्रीज करना" कहा जाता है। इस प्रक्रिया में वीर्य को पतली स्ट्रॉ में भरकर धीरे–धीरे ठंडा किया जाता है और फिर अत्यंत कम तापमान पर रखा जाता है। इस तापमान पर शुक्राणु लगभग निष्क्रिय हो जाते हैं और वर्षों तक सुरक्षित रह सकते हैं।

कोल्ड चेन अनुरक्षण

कोल्ड चेन अनुरक्षण का मतलब है कि वीर्य को संग्रह से लेकर गर्भाधान तक हर समय सही तापमान पर बनाए रखा जाए। यह पूरी प्रक्रिया की सबसे कमजोर कड़ी मानी जाती है, क्योंकि यहाँ थोड़ी–सी गलती पूरी मेहनत को खराब कर सकती है। यदि तरल नाइट्रोजन का स्तर कम हो जाए और समय पर ध्यान न दिया जाए, तो स्ट्रॉ आंशिक रूप से पिघल सकती हैं। ऐसी स्थिति में शुक्राणु स्थायी रूप से खराब हो जाते हैं। इसलिए नाइट्रोजन कंटेनर की नियमित जाँच बहुत जरूरी है। ढक्कन को बार–बार खोलना भी नुकसानदायक होता है, क्योंकि इससे अंदर का तापमान बढ़ जाता है। फील्ड में गर्भाधान करते समय भी कोल्ड चेन बनाए रखना उतना ही जरूरी

है। स्ट्रॉ को सही समय तक ही बाहर निकालना चाहिए और सही तापमान पर ही पिघलाना चाहिए। गलत तरीके से पिघलाई गई स्ट्रॉ गर्भधारण की संभावना को बहुत कम कर देती है।

निष्कर्ष

फील्ड स्तर पर काम करते समय सबसे बड़ी चुनौती होती है सीमित संसाधन और समय का दबाव। कई बार तकनीशियन जल्दीबाजी में छोटे–छोटे नियमों को नजरअंदाज कर देते हैं, जिसका असर सीधे परिणामों पर पड़ता है। गंदे उपकरण, सही तापमान न रखना, स्ट्रॉ को धूप में निकालना जैसी गलतियाँ बहुत आम हैं। फील्ड में काम करने वालों को यह समझना चाहिए कि कृत्रिम गर्भाधान केवल तकनीक नहीं है, बल्कि जिम्मेदारी है। हर स्ट्रॉ के पीछे नर पशु की आनुवंशिक क्षमता, किसान की उम्मीद और पूरे कार्यक्रम की साख जुड़ी होती है। इसलिए प्रशिक्षण, नियमित अभ्यास और अनुशासन बहुत जरूरी है।

दुधारू पशुओं का आवास प्रबंधन

एस. पी. साहु एवं संजय कुमार

पशुधन उत्पादन प्रबंधन विभाग, बिहार पशुचिकित्सा महाविद्यालय, बिहार पशु विज्ञान विश्वविद्यालय, पटना

हमारे कृषि आधारित देश में लगातार बढ़ती हुई मानव जनसंख्या, घटते हुए कृषि योग्य जमीन एवं सिंचाई की समय पर अनुपलब्धता के कारण खेती से किसानों को अधिक लाभ नहीं मिल पा रहा है। इस स्थिति में अपनी आय में वृद्धि के लिए किसानों के पास पशुपालन के अलावा कोई और साधन नहीं बचता है। प्रायः यह देखा गया है कि हमारे पशुपालक पशु तो पालते हैं, परन्तु आवश्यक जानकारी के अभाव में अपने पशुओं की उचित देखभाल एवं प्रबंधन नहीं कर पाते हैं तथा जिसके परिणामस्वरूप पशुओं से होने वाले लाभ से वंचित रह जाते हैं। पशुओं के सुनियोजित और पर्याप्त आवास के बिना दुधारू पशुओं का कुशल प्रबंधन संभव नहीं है । पशुओं के आवास व्यवस्था में समुचित योजना के आभाव के परिणामस्वरूप अतिरिक्त खर्च होता है तथा इससे पशुपालक के लाभ में कमी आती है । दुधारू पशुओं के लिए शेड के निर्माण के दौरान, व्यक्तिगत पशुओं के लिए आरामदायक आवास उपलब्ध कराने का ध्यान रखा जाना चाहिए । सुविधाजनक और आर्थिक परिस्थितियों में स्वच्छ दूध के उत्पादन के लिए शेड में उचित स्वच्छता, मजबूती एवं व्यवस्था बहुत महत्वपूर्ण है ।

दुधारू पशुओं के शेड निर्माण के लिए जगह का चयन

दुधारू पशुओं के शेड निर्माण से पहले निम्नलिखित बिन्दुओं को ध्यान में रखा जाना जरूरी हैः

1 स्थलाकृति और जल निकासीः पशुओं का शेड आसपास के जगह की तुलना में अधिक ऊंचाई पर होना चाहिए ताकि शेड के कचरे एवं बारिश दिनों में जल निकासी के लिए एक अच्छी ढलान प्रदान कर सके तथा शेड के भीतर पानी का जमाव न हो। शेड निर्माण का क्षेत्र समतल होना चाहिए जिससे उसके भराव एवं निर्माण में कम लागत लगे। गहरी भूमि, गड्ढों और दुर्गंध वाले स्थानों के निकटता से बचना चाहिए ।

2 मिट्टी के प्रकारः उपजाऊ मिट्टी को फसल या चारा उत्पादन के लिए उपयोग किया जाना चाहिए। जहाँ तक संभव हो शेड के नींव की मिट्टी बहुत अधिक निर्जलित या शुष्क नहीं होनी चाहिए । ऐसी मिट्टी बरसात के मौसम में गीलापन के प्रति अतिसंवेदनशील होती है और नींव में

दरारें आ जाती है ।

3 सूरज के रोशनी का संपर्क और हवा से सुरक्षाः दुधारू पशुओं का शेड उत्तर दिशा से सूर्य के रोशनी के अधिकतम संपर्क में और दक्षिण दिशा से सूर्य के रोशनी के न्यूनतम संपर्क में होना चाहिए। चाहे सर्दी हो या गर्मी, पशु शेड में तेज हवा के आने से सुरक्षा होना चाहिए। पशुओं के शेड को इस ढंग से निर्माण करना चाहिए कि सीधी धूप शेड के फर्श, नाले एवं नाद के ऊपर पड़े। जहां तक संभव हो, सूर्य की रोशनी के अधिकतम लाभ के लिए पशु शेड की लम्बाई की दिशा पूरब–पश्चिम दिशा में होनी चाहिए ।

4 सरल उपयोगः पशु आवास के सभी शेडों तक आसान पहुंच हमेशा वांछनीय होती है । पशुओं का शेड मुख्य सड़क के किनारे लगभग 100 मीटर की दूरी पर स्थित होने का लक्ष्य रखना चाहिए ।

5 स्थायित्व और आकर्षणः डेयरी फार्म हमेशा आकर्षक लगता है जब पशु आवास की इमारतें एक सुंदर दृश्य प्रदान करती है तथा डेयरी फार्म की भव्यता में इजाफा करती हैं। इसके साथ–साथ डेयरी फार्म के निर्माण में संरचना की मजबूती स्पष्ट रूप से एक महत्वपूर्ण मानदंड होता है।

6 जलापूर्तिः डेयरी फार्म पर पशुओं को पीने के लिए ताजे, स्वच्छ एवं शीतल जल की आपूर्ति प्रचुर मात्रा में सस्ते दर पर उपलब्ध होनी चाहिए ।

7 परिवेशः जंगली जानवरों और चोरों से प्रभावित क्षेत्रों से डेयरी फार्म बनाने से बचना चाहिए । पशु आवास में गायों के भ्रमण वाले क्षेत्रों में संकीर्ण फाटकों, उच्च तीक्ष्ण किनारे वाली नाद, दरवाजे की ढीली जोड़ें, उभरी हुई कीलें, चिकने फर्श आदि जैसे खतरों से मुक्त होना चाहिए ।

8 श्रमिक की उपलब्धताः श्रमिक ईमानदार होने चाहिए तथा सस्ते कीमत पर नियमित रूप से आपूर्ति उपलब्ध होनी चाहिए ।

9 विपणनः डेयरी फार्म केवल उन्हीं क्षेत्रों में होना चाहिए जहाँ पशुपालक अपने उत्पादों को लाभकारी और नियमित रूप से बेच सके । वह कम समय में तथा उचित मूल्य पर डेयरी फार्म की जरूरतों को पूरा करने की स्थिति में होना चाहिए ।

10 बिजलीकी उपलब्धताः डेयरी फार्म को रोशन करने के लिए बिजली सबसे महत्वपूर्ण सस्ता एवं स्वास्थ्यकर तरीका है । चूँकि एक आधुनिक डेयरी फार्म हमेशा बिजली के उपकरणों से चलती है जो कि सस्ती भी होती है, इसलिए बिजली की पर्याप्त आपूर्ति होना जरूरी है ।

11 सुविधाएं, श्रम एवं भोजन की उपलब्धताः पशु आवास का निर्माण इस ढंग से व्यवस्थित होना चाहिए कि चारा भंडारण एवं गोबर के गड्ढे का उपयोग श्रम कुशलता के साथ जा सके ।

पशुओं के लिए पर्याप्त जगह और अच्छी तरह से व्यवस्थित चारागाह और आराम की व्यवस्था होनी चाहिए जिससे दुधारू पशु अधिक दूध उत्पादन कर सके और श्रमिक के काम को आसान बनाने के साथ–साथ भोजन खर्च को भी कम सके । चारा भंडारण स्टोर पशु के शेड से काफी सटी हुई होनी चाहिए । दूध–घर लगभग पशु आवास के केंद्र में स्थित होना चाहिए । सेंटर क्रॉस–गली को फीड स्टोर, स्टॉल एरिया और दूध–घर के संदर्भ में अच्छी तरह से डिजाइन किया जाना चाहिए ।

पशु आवास के प्रकार

हमारे देश में कुछ संगठित डेयरी फार्मों को छोड़कर जहाँ उचित आवास सुविधाएं मौजूद हैं, सबसे व्यापक रूप से प्रचलित तरीका गायों को कच्चे फर्श पर रस्सी से बांध कर रखना है । जब तक पशुओं को अच्छी आवास सुविधाएं प्रदान नहीं करेंगे, जानवर खाली स्थान में या बाहर बहुत दूर तक चले जाएंगे, चारों ओर गोबर करेंगे तथा नाद में चारे को रौंदने और बर्बाद करने का कारण बनेंगे । पशु अत्यधिक हानिकारक मौसम के संपर्क में आएगा, जिससे उनका स्वास्थ्य खराब और कम दूध उत्पादन होगा । दुधारू पशुओं को विभिन्न प्रकार की परिस्थितियों में सफलतापूर्वक रखा जा सकता है, जिसमें दूध देने के समय को छोड़कर, बांधकर रखने से लेकर छोटे प्रतिबंधों तक शामिल हैं।

हालाँकि, वर्तमान समय में दो प्रकार के डेयरी बार्न सामान्य रूप से उपयोग में हैं

(क) खुला आवास प्रणाली

(ख) बंद आवास प्रणाली

(क) खुला आवास प्रणाली

खुला आवासः एक ऐसी आवासीय प्रणाली है जहां पशुओं को दुहाई एवं उपचार के समय को छोड़कर खुला रखा जाता है । दुधारू पशुओं के लिए यह सबसे किफायती प्रणाली है । इस प्रणाली में आवास निर्माण की लागत बंद आवास प्रणाली की तुलना में काफी कम होती है । इसमें बिना ज्यादा बदलाव के भविष्य में विस्तार करना संभव है। इसमें गरम (हीट) पशुओं को आसानी से पता लगाने की सुविधा होती है । इस प्रणाली में पशु स्वतंत्र महसूस करते हैं तथा न्यूनतम खान–पान के साथ भी अधिक लाभदायक होता है। पशुओं को इष्टतम व्यायाम मिलता है जो बेहतर स्वास्थ्य एवं दूध उत्पादन के लिए अत्यंत महत्वपूर्ण है। कुल मिलाकर इस प्रणाली में पशुओं को बेहतर प्रबंधन प्रदान किया जा सकता है ।

(ख) बंद आवास प्रणालीः

बंद आवास प्रणाली तुलनात्मक रूप ढीली आवास प्रणाली से महंगे होते हैं। इस प्रणाली द्वारा मवेशियों को प्रतिकूल जलवायु परिस्थितियों में अधिक सुरक्षा प्रदान किया जाता है। विभिन्न वर्गों के पशुओं के उचित आवास के लिए अलग–अलग शेड की आवश्यकता होती है।

पशु आवास का निर्माण

किसी भी डेयरी फार्म पर पशुओं की संख्या के आधार पर दो तरह के शेड का निर्माण किया जाता है : (क) एक लाइन वाली तथा (ख) दोहरी लाइन वाली ।

(क) एक लाइन वालीः पशुओं की संख्या कम होने पर एक ही कतार में शेड का निर्माण किया जाता है।

(ख) दोहरी लाइन वालीः जब पशुओं की संख्या 20 से ज्यादा हो तो दोहरी लाइन वाली शेड का निर्माण किया जाता है। इस आवासीय प्रणाली में शेड को इस तरह से व्यवस्थित किया जाता है कि सभी पशुओं का सिर शेड के बाहर की तरफ हों या शेड के अन्दर की तरफ हो। इसमें पशुओं को दो पद्धति से रखा जाता हैः

पूंछ से पूंछ पद्धतिः इस पद्धति में पशुओं के सिर एक दूसरे के विपरीत दिशा में होते हैं तथा एक दूसरे को देख नहीं सकते हैं। परन्तु उनके पूँछ एक दूसरे के आमने सामने होते हैं।

पूंछ से पूंछ पद्धति के लाभः

- गायों की सफाई और दुहाई में बीच वाली चौड़ी गली का बहुत फायदा होता है।
- पशुओं से पशुओं में रोग फैलने का खतरा कम होता है।
- गायों को हमेशा बाहर से अधिक ताजी हवा मिल सकती है।
- पशुपालक दूध दुहाई के समय अधिक संख्या में दूधियों का निरीक्षण कर सकता है। क्योंकि दूधिया पशुपालक के दोनों ओर दूध दुहाई कर रहे होते हैं।
- किसी भी प्रकार की छोटी–मोटी बीमारी या पशुओं के पिछले हिस्से में किसी भी तरह के बदलाव का पता जल्दी लगाया जा सकता है।

पूंछ से पूंछ पद्धति की हानि

- पशुओं को चारा डालने में ज्यादा मेहनत लगता है।
- पशुओं में पाचन एवं प्रजनन प्रणाली के माध्यम से बीमारियों का प्रसार होने का अधिक मौका मिलता है।
- सूरज का प्रकाश सीधे निकासी नालों पर नहीं पड़ पाता है।

हेड टू हेड पद्धतिः इस पद्धति में पशुओं का सिर एक दूसरे के आमने सामने होता है तथा शेड के अन्दर पशु एक दूसरे को देख सकते हैं ।

हेड टू हेड पद्धति का लाभः

- सारे पशुओं का सिर एक तरफ होने से पशुओं का प्रदर्शन बेहतर नजर आता है।
- पशुओं को शेड में लाना एवं ले–जाना आसान होता है।
- जल निकास नाली में सूरज की रोशाने सीधी पड़ती है जहाँ कीटानुनाशक के रूप में उनकी जरूरत सबसे ज्यादा होती है।
- दोनों पंक्तियों में बिना मुड़े पशुओं को खिलाना आसान होता है।
- यह संकीर्ण पशु आवास के लिए बेहतर होता है।

हेड टू हेड पद्धति की हानिः

- संकीर्णता के कारण दूध दुहाई करना मुश्किल होता है।
- पशुओं के बीच श्वशन संबंधी रोगों के होने का खतरा ज्यादा होता है।

पशु आवास निर्माण की रूपरेखा

पशु आवास के निर्माण के समय इस बात पर ध्यान देना जरूरी होता है कि पशु आवास पशुओं के लिए आरामदेह एवं सुरक्षित होने के साथ–साथ उसका निर्माण भी आर्थिक रूप से सस्ता हो। पशु आवास के निर्माण पर कम लागत लगे और भविष्य में उसकी मरम्मत पर कम खर्च करना पड़े। जहाँ तक संभव हो सके पशु आवास का निर्माण स्थानीय स्तर पर उपलब्ध सामग्री से करे। एक अच्छा शेड पशुओं को गर्मी, सर्दी, बारिश एवं तेज हवाओं से सुरक्षा प्रदान करता है जिससे पशुओं को तनाव नहीं होता है और उनकी उत्पादन क्षमता बढ़ती है। इसके निर्माण के लिए योजनाबद्ध तरीके से सोचने की जरूरत होती है। अतरू पशु आवास के निर्माण के समय निम्नलिखित बिन्दुओं पर ध्यान देना आवश्यक होता हैः

1 दिशा : पशु आवास का निर्माण लम्बवत अक्ष पर पूरब से पश्चिम की दिशा में होनी चाहिए। इसके दरवाजे उत्तर या दक्षिण दिशा में खुलने चाहिए ताकि पशु आवास में सूरज के रोशनी सीधी न पड़े।

2 नींवः पशु के आवास के बिल्डिंग की नींव गहरी एवं मजबूत होनी चाहिए। जमीन एवं बिल्डिंग के आकार के अनुसार नींव की गहराई रखी जाती है तथा यह 4 से 6 फीट तक होती है। यह नींव सीमेंट–कंक्रीट से बनाई जाती है। यह नींव ऊपर से बिल्डिंग के दीवाल के चौडाई के बराबर होती

है लेकिन नीचे से इसकी चौडाई ज्यादा होती है।

3 फर्शः पशु शेड के अंदर का फर्श अभेद्य सामग्री से निर्मित होना चाहिए जिसे आसानी से साफ किया और सूखा रखा जा सके। फर्श फिसलन रहित हो बने ताकि पशु उठाते–बैठते या चलते समय जख्मी न हो। ईंटों से बने फर्श से भी इसका उद्देश्य पूरा हो सकता है। लेकिन सीमेंट कंक्रीट से बना फर्श सबसे बेहतर होता है। शेड में पशुओं के दोनों तरफ 12–15 फीट का 1.00 से 1.25 इंच के ढलान वाला खुरदुरा फर्श नाद से नाली तक बनाना चाहिए। नाली 8 इंच से कम गहरी नहीं होनी चाहिए। नाली के सतह को गोलाकार रखें तथा ढलान 2.0–2.5 प्रतिशत रखें ताकि पशुओं का पेशाब आदि नाली में आसानी से बहकर गड्ढे में जा सके एवं सफाई करने में आसानी हो। आजकल रबर की शीत मिलती है जिसे शेड के फर्श पर बिछाया जाता है और पशुओं के लिए आरामदेह होने के साथ–साथ उसे फर्श पर फिसलने से रोकता है।

4 दीवारः पशुओं के शेड को घेरने के लिए दीवारें सहायक संरचनाएं होती है। ये ईंट, पत्थरों या कंक्रीट जैसी सामग्री से तैयार की जाती है। दीवार की ऊँचाई आवास के प्रकार तथा पशुओं की संख्याँ पर निर्भर करती है। दीवारों के अंदरूनी हिस्से में सीमेंट की चिकनी सख्त प्लास्टर होनी चाहिए, जिससे उसपर धूल और नमी जमा न हों। पशु आवास की मुख्य दीवार जिसपर छत टिकी होती है वह कम–से–कम 3 मीटर ऊंची और बाँकी दीवारें 1.5 मीटर ऊंची होनी चाहिए। जहाँ पर दीवार तथा फर्श आपस में मिलते हैं वहाँ दीवार गोल होनी चाहिए जिससे सफाई करने में ज्यादा सुविधाजनक हो।

5 छत : गर्मी, धुप, ठंढ तथा बारिश से पशुओं की रक्षा करने के उद्देश्य से छत का निर्माण किया जाता है एवं साथ ही यह आवास के आतंरिक संरचनाओं को भी सुरक्षा प्रदान करती है। शेड की छत एस्बेस्टस शीट या टाइल्स की हो सकती है। नालीदार लोहे की चादरें अलग–अलग मौसमों में शेड के अंदर के तापमान में अत्यधिक उतार–चढ़ाव करने का नुकसान करती हैं। हालांकि, सूरज की किरणों को प्रतिबिंबित करने के लिए एस्बेस्टस शीट या लोहे की चादरों के ऊपर एल्यूमीनियम पेंट करने या लकड़ी के फाल्स सीलिंग के उपयोग से शेड के अन्दर का वातावरण को नियंत्रित किया जा सकता है। पशुओं को आवश्यक हवा प्रदान करने के लिए छत की ऊंचाई किनारों पर 8 फीट केंद्र पर 15 फीट पर्याप्त होती है। छत दीवार से कम से कम 0.75 मीटर बाहर निकली होनी चाहिए ताकि बारिश के पानी के झोंकें से बचा जा सके। एक वयस्क गाय को उष्णकटिबंधीय परिस्थितियों में कम से कम लगभग 800 क्यूबिक फीट वायु स्थान की आवश्यकता होती है। वेंटिलेशन को अधिक प्रभावी बनाने के लिए निरंतर रिज वेंटिलेशन को सबसे अच्छा माना

जाता है ।

6 दरवाजे: एक लाइन वाले पशु शेड के दरवाजे 5 फीट चौड़े एवं 7 फीट ऊंचाई के साथ होने चाहिए । दोहरी लाइन वाले शेड के लिए चौड़ाई 8 फीट तथा ऊंचाई 9 फीट से कम नहीं होनी चाहिए। शेड के सभी दरवाजे पूरी तरह से खुले होने पर बाहरी दीवार के सामने बराबर से सट जाना चाहिए। पर्याप्त प्रकाश के लिए दीवार में विभिन्न जगहों पर लोहे की फ्रेम वाली खिरकियाँ लगानी चाहिए।

7 नाद: पशुओं को शेड में पर्याप्त जगह उपलब्ध कराने के साथ यह ध्यान रखना बहुत जरूरी है कि सभी पशुओं को खाने–पीने के लिए भी पर्याप्त जगह मिले। हटाने योग्य विभाजन के साथ सीमेंट–कंक्रीट की बनी निरंतर नाद मजबूती एवं सफाई की दृष्टि से सबसे अच्छी होती है। ऊँचे सामने वाली नाद के लिए 1 फुट 4 इंच की ऊँचाई और कम सामने की नाद के लिए 6 इंच से 9 इंच की ऊँचाई को पर्याप्त माना जाता है। कम सामने की नाद पशुओं के लिए अधिक आरामदायक होती है परन्तु उच्च सामने की नाद दाने–चारे की बर्बादी को रोकती है । नाद के पीछे की ऊंचाई 2.5 से 3.0 फीट रखनी चाहिए। एक अच्छे नाद के लिए कुल मिलाकर 2 से 2.5 फीट की चौड़ाई पर्याप्त होती है। नाद को फर्श से 4–6 इंच ऊंचा रखें ताकि पानी भरते या सफाई करते समय इसे पूरी तरह खाली किया जा सके। नाद की निचली सतह गोलाकार होनी चाहिए।

8 गली: केन्द्रीय गली की चौड़ाई 5 से 6 फीट होनी चाहिए, जिसमें पशुओं का मुंह बाहर की ओर होने वाली गटर और अंदर की ओर मुंह करने पर 4 से 5 फीट हो ९ चारा डालने की गली पूँछ से पूँछ प्रणाली में 4 फीट चौड़ा होना चाहिए। केन्द्रीय गली को केंद्र से एक दूसरे के समानांतर चलने वाले दोनों नाली की ओर 1 इंच की ढलान होना चाहिए।

9 नाली: यह इतना चौड़ा होना चाहिए कि बिना रुके सभी गोबर को बहा सके तथा सफाई करने में आसान हो। उपयुक्त आकार वाले नाली 2 इंच चौड़ा तथा पशु के खड़े होने से 1 इंच दूर हो। नाली में प्रत्येक 10 फीट लंबाई के लिए 1 फूट का ढाल होना चाहिए जिससे कि तरल मलमूत्र का प्रवाह मुक्त रूप से हो।

10 उचित स्थान: पशु शेड का क्षेत्रफल पशुओं की संख्याँ पर निर्भर करता है। जब पशुओं को संकरी जगह पर रखते हैं तथा चलने–फिरने के लिए पर्याप्त जगह नहीं देते हैं तो वे तनावग्रस्त हो जाते हैं। इससे पशु अस्वस्थ हो जाता है तथा ऐसे पशुओं का दूध उत्पादन भी कम हो जाता है। हमारे यहाँ के वातावरण में साल के अधिकाँश महीनों में खुली आवास प्रणाली पशुओं के उत्पादन एवं लाभ के हिसाब से सबसे अच्छी आवास व्यवस्था है। खुली आवास प्रणाली में पशुओं को

निम्नलिखित स्थान प्रदान किया जाता हैः

पशु के प्रकार	फर्श की जगह (वर्ग मी^{2})		प्रति शेड पशु की संख्याँ	नाद की जगह (मी^{2})
	ढका स्थान	खुला स्थान		
गाय	3.5	7.0	50	0.8-1.0
भैंस	4.0	8.0	50	0.8-1.0
गाभिन पशु	12	12	1	1.0-1.2
जन्म–3 महीने	1.0	2.0	30	0.2-0.3
3–6 महीने	2.0	4.0	30	0.3-0.4
सांड	12	24	1	1.0-1.2

11 आरामदायक बिछावनः

पशु स्वास्थ्य एवं उसके आराम के लिए अच्छी बिछावन सामग्री का महत्वपूर्ण योगदान है। क्योंकि यह पशु के स्वास्थ्य एवं पैर के चोटों को रोकने में मदद करता है। उचित बिछावन इंसुलेशन का काम करता है जो थनों को साफ रखने तथा बेहतर दूध उत्पादन में सहायता करता है। पशु शेड में पर्याप्त नरम, सूखे एवं साफ़ बिछावन सामग्री प्रदान करना चाहिए।

डेयरी फार्म पर आवश्यक पशु शेड

डेयरी फार्म पर बिल्डिंग को आयताकार या वर्गाकार रूप से बनाया जाता है। हालाँकि वर्गाकार बिल्डिंग अच्छे समझे जाते है जहाँ भवनों का निर्माण वर्ग के तीन तरफ किया जाता है। केंद्र में ऐसे स्थान पर भवनों का निर्माण करना चाहिए जहाँ से अन्य भवनों तक कम समय में आसानी से पहुँचा जा सके। डेयरी फार्म पर भवनों का समूहीकरण इस ढंग से होना चाहिए कि प्रत्येक कार्य सफलतापूर्वक, पूरी क्षमता से तथा कम खर्च पर कम समय में किया जा सके। डेयरी फार्म पर विभिन्न भवनों का निर्माण करते समय इस बात का ध्यान रखना चाहिए कि आवश्यकता पड़ने पर भविष्य में इनका विस्तार किया जा सके। एक आदर्श डेयरी फ़ार्म पर निन्मलिखित पशु शेड होना चाहिए–

1 दुधारू पशुओं का शेड : यह पूरी तरह से ढँका हुआ शेड होता है जिसमें दूध देने वाली पशुओं को रखा जाता है। पशुओं के दूध दुहाई एवं चारा खिलाने का काम इसी शेड में किया जाता है। यह डेयरी फार्म का सबसे प्रमुख शेड होता है इसलिए इसे केन्द्रीय स्थान पर बनाना चाहिए। अन्य सभी शेड इसके चारों ओर अवस्थित होना चाहिए। इस शेड में दुधारू पशुओं को पूँछ से पूँछ या सिर से सिर पद्धति में रखा जा सकता है। शेड की लम्बाई पशुओं की संख्याँ तथा अपनाई गयी

पद्धति पर निर्भर करती है जो 1.5 से 1.7 मीटर तक हो सकती है तथा इसकी चौडाई 1.05 से 1.20 मीटर तक हो सकती है। सामान्यतया शेड की चौड़ाई, उसके लम्बाई का 80 प्रतिशत होना चाहिए। शेड के केन्द्रीय गली की चौडाई 1.5 से 1.8 मीटर तक होनी चाहिए।

2 **सूखे पशुओं का शेडः** जो पशु दूध देना बंद कर देती है उन्हें इस शेड में रखा जाता है। यह एक सरल शेड होता है जिसमें ढँका क्षेत्र एवं खुला क्षेत्र शामिल होता है। इस शेड में प्रति पशु 6.0 से 6.5 वर्ग मीटर स्थान दिया जाता है।

3 **नवजात बछड़ों के लिए शेड** : यह शेड दुधारू पशुओं के शेड के नजदीक या अंत में होना चाहिए ए इससे दूध दुहाई के समय जल्दी से बछड़ा लाने में सुविधा होती है। नवजात बछड़े को व्यक्तिगत रूप से अलग रखा जाता है। अगर डेयरी फार्म पर बछड़ों की संख्यॉं ज्यादा हो तो अलग से बछड़ा शेड की यूनिट निर्माण करना चाहिए। एक आयताकार शेड में प्रत्येक बछड़े के लिए 2. 23–2.78 वर्ग मीटर स्थान होना चाहिए। बछड़ों के शेड में उचित मात्र में प्रकाश, वेंटिलेशन एवं जल निकासी का प्रबंध होना चाहिए तथा फर्श पर मुलायम बिछावन का प्रबंध करना चाहिए।

4 **युवा बछड़ों के लिए शेडः** डेयरी फार्म पर बछड़ों को कभी भी गोशाला में बड़े पशुओं के साथ नहीं रखना चाहिए। युवा बछड़ों को लगभग छह महीने की उम्र से लेकर प्रजनन उम्र तक दूध पीने वाले बछड़ों से अलग रखना चाहिए। कुशल प्रबंधन के लिए युवा बछड़ों को उसके उम्र के अनुसार विभिन्न समूहों में विभाजित कर रखना चाहिए। नर एवं मादा बछड़ों के लिए अलग–अलग शेड होना चाहिए। इस शेड में सूरज का प्रकाश, वेंटिलेशन और उचित जल निकासी का प्रावधान होना चाहिए। नम और खराब जल निकासी वाले फर्श बछड़ों में सांस की परेशानी का कारण बनते हैं जिसके लिए वे अतिसंवेदनशील होते हैं। प्रत्येक बछड़ा शेड में एक खुला व्यायाम यार्ड होना चाहिए।

5 **ब्यांत वाले पशुओं का शेडः** दूध देने वाली पशु शेड में पशुओं का ब्याना बेहद अवांछनीय और आपत्तिजनक होता है। ब्यांत के लिए अलग शेड होने से दूध उत्पादन में स्वच्छता होती है और पशुओं में संक्रामक गर्भपात जैसी बीमा फैलने के संभावना कम हो जाती है। ब्यांत वाले पशुओं को प्रसव की तारीख के 3–4 सप्ताह पहले इस शेड में स्थानांतरित कर देना चाहिए। प्रसूति शेड की संख्यॉं फार्म पर प्रजननशील पशुओं के संख्यॉं के 10 प्रतिशत होना चाहिए। सभी प्रसूति पशुओं के लिए दरवाजे के साथ चारों ओर से बंद शेड के रूप में विशेष आवास उपलब्ध कराया जाना चाहिए। इसका क्षेत्रफल लगभग 100 से 150 वर्ग फीट होना चाहिए। पर्याप्त नरम बिस्तर की उपलब्धता के साथ, इसे खिड़कियों या रिज वेंटिलेशन के माध्यम से पर्याप्त हवा प्रदान किया

जाना चाहिए।

6 अलगाव शेडः संक्रामक रोग से ग्रसित पशुओं को शीघ्र ही शेष झुण्ड से अलग कर देना चाहिए। लगभग 150 वर्ग फुट के ढीले शेड इस उद्देश्य के लिए बहुत उपयुक्त होता है। यह अन्य शेडों से कुछ दूरी पर स्थित होना चाहिए। प्रत्येक आइसोलेशन शेड स्व–निहित होना चाहिए और जल निकासी मुख्य निकास प्रणाली से अलग होना चाहिए।

7 सांड शेडः सांडों के लिए आवास की योजना बनाते समय मानव सुरक्षा, प्रतिकूल मौसम से सुरक्षा तथा व्यायाम के लिए प्रावधान प्रमुख बिंदु हैं। सांड को कभी भी सख्त फर्श पर कैद में नहीं रखना चाहिए। पर्याप्त व्यायाम के बिना इस तरह से रखने से खुरों का अतिवृद्धि हो जाता है जिससे उसकी प्रजनन शक्ति में कमी और गरम मादा पशुओं पर चढ़ने में कठिनाई होती है। इस शेड का फर्श मोटे सीमेंट–कंक्रीट का निर्मित होना चाहिए जिसमें प्रकाश और वेंटिलेशन की पर्याप्त व्यवस्था हो। सांड को एक मजबूत लगभग 2 फीट ऊंचाई की चारदीवारी के साथ प्रदान किए गए व्यायाम यार्ड तक खुली पहुंच होनी चाहिए। सांड के शेड के अन्दर ही चारे और पानी की व्यवस्था होनी चाहिए। व्यायाम यार्ड को एक स्विंग गेट के माध्यम से एक सर्विस क्रेट के साथ संचार करना चाहिए जो एक परिचर के उपयोग को सांड को सर्विस क्रेट में लाने के लिए बचाता है।

ऊपर दिए गए शेडों के अलावा डेयरी फार्म पर दुग्ध अभिलेख कक्ष, चारे–दाने का स्टोर, कुट्टी काटने का शेड, फार्म यंत्र रखने का शेड, कार्यालय आदि आवश्यकतानुसार होना चाहिए।

पशु आवास की सफाई व्यवस्था

पशु अपना अधिकांश समय पशु आवास में व्यतीत करता है जहाँ उसे चारा–पानी दिया जाता है तथा उसकी दुहाई की जाती है। इसलिए पशु आवास जितना आरामदेह एवं स्वच्छ होगा उतनी ही अच्छी पशुओं की देखभाल होगी तथा उसका उत्पादन बेहतर होगा। साफ़–सुथरा एवं स्वच्छ आवास पशुओं में रोग पैदा करने में सक्षम सूक्ष्मजीवों के उन्मूलन के लिए प्रोत्साहित करता है। नल के पानी के उन्मुक्त उपयोग कर पशुओं के शेड की सफाई आसानी एवं त्वरित तरीके से किया जा सकता है जो तरल अपशिष्ट और मूत्र को पूरी तरह से हटाने में सक्षम होता है। यदि पशु चरने के लिए नहीं जाते है तो उन्हें खुले स्थान में कुछ देर के लिए छोड़ देना चाहिए जिससे कि पशु शेड के सफाई अच्छी तरह से हो सके। गोबर एवं अन्य ठोस अपशिष्ट पदार्थ को पशु शेड से दिन में कम से कम दो बार हटाना चाहिए तथा इसे पशु आवास से 30–40 मीटर की दूरी पर किसी गड्ढे में इकट्ठा करना चाहिए। नाद से प्रतिदिन बचा हुआ चारा हटाना चाहिए तथा दुहाई की जगह एवं दूध

के रख–रखाव के स्थान के अच्छी तरह सफाई करने से मक्खी–मच्छर का प्रकोप कम हो जाता है। सप्ताह में कम से कम एक बार फीनायल के घोल से शेड के फर्श को साफ़ करना चाहिए तथा महीने में एक बार उपयुक्त कीटनाशक दवाई का छिड़काव फर्श, दीवार एवं छत पर करना चाहिए। दरारों और दरारों में रहने वाले टिक्स और माइट्स को खत्म करने के लिए समय–समय पर दीवारों में कीटनाशकों को मिलाकर सफेदी करें। समय–समय पर पानी की सफाई से शैवाल, बैक्टीरिया और वायरस की वृद्धि समाप्त हो जाती है और पशु स्वस्थ रहता है।

गायों में कृत्रिम गर्भाधान की मानक संचालन प्रक्रिया

दीप्यमान सेनगुप्ता

पशु प्रजनन शल्य एवं प्रसूति विज्ञान विभाग, बिहार पशु चिकित्सालय महाविद्यालय, पटना–14

सारांश

कृत्रिम गर्भाधान (AI) गायों के प्रजनन कार्यक्रमों में एक अत्यंत महत्वपूर्ण तकनीक है, जो आनुवंशिक सुधार, रोग नियंत्रण तथा प्रजनन दक्षता में वृद्धि में महत्वपूर्ण भूमिका निभाती है। कृत्रिम गर्भाधान की सफलता मुख्यतः एक सुव्यवस्थित मानक संचालन प्रक्रिया (SOP) के कठोर अनुपालन पर निर्भर करती है, जिससे एकरूपता बनी रहती है, त्रुटियाँ कम होती हैं तथा गर्भधारण दर में वृद्धि होती है। यह SOP कृत्रिम गर्भाधान की आवश्यक प्रक्रियाओं का विवरण प्रस्तुत करता है, जिसमें पशु का इतिहास संकलन, द्रव नाइट्रोजन टैंक से सीमेन स्ट्रॉ का सुरक्षित निष्कर्षण, सीमेन का उचित थॉइंग, AI गन की सही तैयारी, सीमेन का उचित स्थान पर जमाव तथा गर्भाधान के दौरान एवं बाद में पशु की देखभाल शामिल है। इसके अतिरिक्त, गर्भाधान के बाद उचित अभिलेख संधारण को भी अत्यंत आवश्यक बताया गया है। इन मानक प्रक्रियाओं का पालन पशु चिकित्सकों, तकनीशियनों एवं पशुपालकों द्वारा किए जाने से प्रजनन दक्षता में सुधार एवं सतत पशु उत्पादन सुनिश्चित किया जा सकता है।

परिचय

कृत्रिम गर्भाधान (AI) गायों में व्यापक रूप से अपनाई जाने वाली सहायक प्रजनन तकनीकों में से एक है। यह तकनीक श्रेष्ठ आनुवंशिक गुणों वाले सांड के सीमेन को उचित हीट अवस्था में मादा जनन पथ में स्थापित कर गर्भाधान सुनिश्चित करती है। कृत्रिम गर्भाधान की सफलता हेतु एक सुव्यवस्थित मानक संचालन प्रक्रिया का पालन आवश्यक है, जिससे गर्भधारण दर में वृद्धि हो तथा तकनीकी त्रुटियाँ कम हों। AI के मानकीकृत प्रोटोकॉल से पशु उत्पादन, प्रजनन क्षमता एवं झुंड की उत्पादकता में उल्लेखनीय सुधार होता है।

इतिहास संकलन

कृत्रिम गर्भाधान से पूर्व इतिहास संकलन एक महत्वपूर्ण चरण है, जिससे पशु की उपयुक्तता एवं गर्भाधान का सही समय निर्धारित किया जा सके। इसमें पशु की नस्ल, आयु, बछड़ा संख्या

(Parity), शरीर भार तथा पहचान संख्या का अभिलेखन किया जाना चाहिए। प्रजनन इतिहास में यौवनावस्था की आयु, अंतिम ब्यांत तिथि, ब्यांत अंतराल, पूर्व गर्भाधानों की संख्या तथा रिपीट ब्रीडिंग का इतिहास शामिल होना चाहिए। इसके अतिरिक्त हीट की शुरुआत, अवधि, तीव्रता एवं हीट पहचान विधि की जानकारी अत्यंत आवश्यक है।

सीमेन स्ट्रॉ को भंडारण पात्र से निकालने की सही विधि

1. सीमेन स्ट्रॉ रखने वाले कैनिस्टर को टैंक के गर्दन भाग में स्थित फ्रॉस्ट लाइन से अधिक ऊपर नहीं उठाना चाहिए तथा सीमेन स्ट्रॉ को ट्वीजर फोर्सेप्स की सहायता से बाहर निकालना चाहिए।
2. फ्रॉस्ट लाइन टैंक के गर्दन भाग में वह क्षेत्र होती है जिसके नीचे बर्फ की परत जमी रहती है। यह एक खतरनाक क्षेत्र (डेंजर जोन) है, जिसके ऊपर तापमान में अचानक वृद्धि हो जाती है, जिससे सीमेन स्ट्रॉ को गंभीर क्षति पहुँच सकती है।
3. भंडारण टैंक से एक बार निकाली गई सीमेन स्ट्रॉ को पुनः कैनिस्टर में कभी भी वापस नहीं रखना चाहिए।
4. सीमेन स्ट्रॉ को कैनिस्टर से कभी भी नंगे हाथों से पकड़कर बाहर नहीं निकालना चाहिए।
5. जैसे ही सीमेन स्ट्रॉ बाहर निकाली जाए, कैनिस्टर को तुरंत वापस भंडारण टैंक में नीचे कर देना चाहिए।

सीमेन स्ट्रॉ का थॉइंग (Thawing of Semen Straws)

1. सीमेन स्ट्रॉ को द्रव नाइट्रोजन में −196 डिग्री से० तापमान पर भंडारण टैंक में डुबोकर रखा जाता है। थॉइंग वह प्रक्रिया है जिसमें गर्भाधान से पूर्व सीमेन स्ट्रॉ को −196 डिग्री से० से 37 डिग्री से० तापमान पर लाया जाता है।
2. जैसे ही स्ट्रॉ को भंडारण टैंक से बाहर निकाला जाए, उसे कम से कम 5 बार हवा में हिलाना चाहिए ताकि स्ट्रॉ से चिपका हुआ द्रव नाइट्रोजन वाष्पीकृत हो जाए। यह चरण अत्यंत महत्वपूर्ण है, क्योंकि इसके बाद स्ट्रॉ को 37 डिग्री से० पानी में डुबोया जाता है और द्रव नाइट्रोजन की उपस्थिति में स्ट्रॉ के फटने की संभावना रहती है।
3. थॉइंग की प्रक्रिया 37 डिग्री से० तापमान वाले पानी से भरे थर्मस में स्ट्रॉ को ३० सेकंड तक डुबोकर की जाती है।
4. थॉइंग के पश्चात स्ट्रॉ को पानी से बाहर निकालकर टिशू पेपर टॉवल से अच्छी तरह पोंछकर सुखा लेना चाहिए। यह आवश्यक है क्योंकि स्ट्रॉ पर चिपका हुआ पानी सीमेन के संपर्क में आ सकता है तथा पानी शुक्राणुनाशक (spermicidal) होता है।

AI गन की सही तैयारी

1. सीमेन स्ट्रॉ को AI गन के बैरल में डालने से पहले पिस्टन को गन से स्ट्रॉ की पूरी लंबाई तक पीछे खींच लेना चाहिए। थॉ की गई सीमेन स्ट्रॉ को AI गन में फैक्ट्री सील सिरे (कॉटन–PVC-कॉटन) से प्रविष्ट कराना चाहिए।

2. स्ट्रॉ के लैब सील सिरे को कैंची की सहायता से स्ट्रॉ के समकोण पर काटना चाहिए। समकोण से विचलन होने पर शीथ में स्ट्रॉ का फिट सही नहीं बैठता, जिससे सीमेन का बैकफ्लो हो सकता है।

3. काटे गए सिरे को शीथ के हरे/पीले इन्सर्ट में ठीक प्रकार से फिट करना चाहिए। इसके बाद शीथ को धीरे–धीरे गन पर चढ़ाना चाहिए। ऊपरी सिरे पर शीथ का स्प्लिट भाग गन के हेड से सटा होना चाहिए तथा O रिंग को शीथ के स्प्लिट सिरे पर कसकर लगा देना चाहिए।

4. प्लास्टिक कवर युक्त AI शीथ का उपयोग आदर्श माना जाता है, क्योंकि इससे योनि जनित रोगाणुओं द्वारा गर्भाशय में होने वाले संक्रमण की संभावना न्यूनतम हो जाती है।

सीमेन जमाव का उचित स्थान

1. गन के वेस्टीब्यूल से गुजरने के बाद उसे क्षैतिज अवस्था में रखना चाहिए तथा यदि गन योनि की सिलवटों में फँस जाए तो रेक्टल हाथ की सहायता से सर्विक्स को आगे की ओर खींचकर योनि की सिलवटों को सीधा करना चाहिए।

2. जैसे ही गन सर्विक्स तक पहुँचे, शीथ पर लगी पतली सुरक्षात्मक प्लास्टिक कवर को पीछे खींच लेना चाहिए तथा रेक्टल हाथ से सर्विक्स के पश्च भाग को मजबूती से पकड़ना चाहिए, जिससे 'फॉर्निक्स वेजाइना' नामक ब्लाइंड पाउच समाप्त हो जाए और गन सर्विक्स के आंतरिक ओस में सही ढंग से प्रवेश कर सके।

3. सर्विक्स गर्भाशय के गर्दन भाग में स्थित एक उपास्थीय (कार्टिलेजनस) संरचना होती है, जिसमें तीन से पाँच वलयाकार रिंग होती हैं। जब गन सर्विक्स के ओस में प्रवेश कर पहली रिंग को पार करती है, तब किरकिरा सा अनुभव महसूस होता है।

4. इस अवस्था में सर्विक्स को सभी दिशाओं में धीरे–धीरे हिलाना चाहिए ताकि वह गन के ऊपर आसानी से फिसल सके। गन पर अधिक बल नहीं लगाना चाहिए, क्योंकि उद्देश्य सर्विक्स को गन के ऊपर ग्लाइड कराना है, न कि गन को जबरन सर्विक्स के भीतर धकेलना।

5. गन पर अत्यधिक बल लगाने से सर्वाइकल रिंग से फिसलकर गर्भाशय की दीवार फटने की पूरी संभावना रहती है, जिससे पशु का जीवन संकट में पड़ सकता है।

6. जब गन सर्विक्स को पार कर ले, तब उसे गर्भाशय के शरीर भाग से आगे नहीं बढ़ाना चाहिए। इसे तर्जनी (इंडेक्स फिंगर) द्वारा पैल्पेशन से पुष्टि किया जा सकता है।

7. अंत में AI गन के पिस्टन को दबाकर सीमेन को गर्भाशय के शरीर भाग में जमाव करना चाहिए।

गर्भाधान के दौरान एवं पश्चात पशु की देखभाल

1. गाय को ट्रेविस में अच्छी तरह सुरक्षित बाँधना चाहिए तथा एक सहायक व्यक्ति को पूँछ को एक ओर पकड़कर रखना चाहिए।

2. गाय के रेक्टम में उपस्थित मल को पूर्णतः निकालना चाहिए। इसके लिए अच्छी तरह लुब्रिकेटेड दस्ताने पहना हुआ हाथ रेक्टम में प्रविष्ट कराया जाता है। हाथ डालने की विधि में पहले सभी उँगलियों को मिलाकर शंकु (कोन) का आकार बनाते हुए हथेली को पहले रेक्टम में डालना चाहिए, तत्पश्चात धीरे–धीरे पूरा हाथ अंदर प्रविष्ट कराना चाहिए। इसके बाद बैक–रेकिंग विधि से मल निकालकर पेरिनियम को स्वच्छ पानी से धोकर टिशू टॉवल से सुखा देना चाहिए।

3. इसके पश्चात अच्छी तरह लुब्रिकेटेड दस्ताने वाला हाथ रेक्टम में डालकर सर्विक्स को मजबूती से पकड़ना चाहिए।

4. तत्पश्चात भरी हुई AI गन को वल्वा के माध्यम से ऊपर की दिशा में प्रविष्ट कराना चाहिए, जिससे वह मूत्रमार्ग के छिद्र (यूरेथ्रल ओरिफिस) में प्रवेश न कर सके।

5. गर्भाधान पूर्ण होने के बाद क्लिटोरिस की हल्की मालिश करना एक अच्छी प्रक्रिया मानी जाती है, क्योंकि इससे गर्भधारण दर में वृद्धि होती है।

अभिलेख संधारण

1. पशु की पहचान विवरण (कान की टैग / आईडी नंबर, नस्ल, आयु, बछड़ा संख्या / Parity)
2. गर्भाधान की तिथि और सटीक समय
3. हीट से संबंधित विवरण (शुरुआत का समय, तीव्रता और हीट पहचान की विधि)
4. सीमेन विवरण, जिसमें शामिल हैं: सांड की पहचान, सीमेन बैच / लॉट नंबर, स्ट्रॉ नंबर और सीमेन स्टेशन, डैम का दूध उत्पादन (Dam's Yield)
5. प्रयुक्त सीमेन का प्रकार (ताजा, ठंडा या फ्रोजनय पारंपरिक या सेक्स–सॉर्टेड)
6. गर्भाधानकर्ता का विवरण (तकनीशियन / पशु चिकित्सक का नाम या कोड)

गर्भाधान के दौरान एवं बाद में पशु की देखभाल

चन्द्र शेखर आजाद एवं दीपशिखा

पशुचिकित्सा प्रसूति शास्त्र एवं प्रसूति विज्ञान विभाग

बिहार पशुचिकित्सा महाविघालय, बिहार पशु विज्ञान विश्वविद्यालय, पटना

सारांश

पशुओं में सफल गर्भाधान केवल सही समय पर बीज डालने से ही नहीं होता, बल्कि गर्भाधान के दौरान और उसके बाद की उचित देखभाल भी अत्यंत आवश्यक होती है। यदि इस अवधि में पशु को तनाव, गलत आहार या अस्वच्छ वातावरण का सामना करना पड़े, तो गर्भ ठहरने की संभावना कम हो जाती है। यह लेख किसानों को सरल भाषा में गर्भाधान के समय तथा बाद में पशु की सही देखभाल के उपायों की जानकारी प्रदान करता है, जिससे गर्भधारण दर बढ़ाई जा सके और पशुपालक को अधिक लाभ प्राप्त हो।

सूचक शब्द : गर्भाधान, डीट, संतुलित आहार, भ्रूण

परिचय

भारत जैसे कृषि प्रधान देश में पशुपालन ग्रामीण अर्थव्यवस्था की रीढ़ है। दूध उत्पादन बढ़ाने, अच्छी नस्ल के बछड़े प्राप्त करने और पशुपालकों की आय में वृद्धि करने के लिए पशुओं का नियमित एवं सफल प्रजनन अत्यंत आवश्यक है। आज के समय में कृत्रिम गर्भाधान (Artificial Insemination) एक सुलभ, वैज्ञानिक और किफायती तकनीक के रूप में व्यापक रूप से अपनाई जा रही है। यह विधि न केवल उन्नत नस्ल सुधार में सहायक है, बल्कि संक्रामक रोगों से भी पशुओं की रक्षा करती है।

गर्भाधान के समय पशु का मानसिक एवं शारीरिक रूप से शांत रहना अत्यंत आवश्यक है, क्योंकि अत्यधिक भय या तनाव से हार्मोनल असंतुलन उत्पन्न हो सकता है, जिससे गर्भधारण की संभावना कम हो जाती है। इसी प्रकार, गर्भाधान के बाद प्रारंभिक कुछ दिन बहुत संवेदनशील होते हैं, जब थोड़ी–सी लापरवाही भी भ्रूण के नष्ट होने का कारण बन सकती है। अतः किसानों के लिए यह जानना आवश्यक है कि गर्भाधान के दौरान और बाद में पशु की देखभाल किस प्रकार की जाए।

गर्भाधान के दौरान पशु की देखभाल

1. पशु को शांत वातावरण देना

- गर्भाधान के समय पशु को डराना या मारना नहीं चाहिए
- शोर–शराबे और भीड़ से दूर रखें
- तनाव से गर्भधारण की संभावना घटती है
- पशु से धीरे–धीरे बात करें और अचानक हरकत न करें
- फिसलन रहित फर्श पर पशु को खड़ा करें
- अन्य आक्रामक पशुओं से अलग रखें

2. स्वच्छता का विशेष ध्यान

- पशु के पिछले भाग को साफ पानी से धोना चाहिए
- गंदगी से संक्रमण का खतरा बढ़ता है
- गर्भाधान हमेशा स्वच्छ स्थान पर होना चाहिए
- पूँछ को बाँध देना चाहिए ताकि गंदगी न लगे
- तकनीशियन के हाथ व उपकरण पूर्णतः साफ होने चाहिए
- गीली एवं कीचड़ वाली जगह पर गर्भाधान न कराएं

3. सही समय पर गर्भाधान

- हीट के स्पष्ट लक्षण दिखाई देने पर ही गर्भाधान कराएं
- अधिक देर या बहुत जल्दी गर्भाधान से सफलता कम होती है
- हीट आने के 12–18 घंटे के भीतर गर्भाधान सर्वोत्तम रहता है
- सुबह–शाम हीट निरीक्षण की आदत डालें
- संदिग्ध हीट / साइलेंट हिट में गर्भाधान से बचें

4. प्रशिक्षित व्यक्ति द्वारा गर्भाधान

- केवल योग्य एवं प्रशिक्षित तकनीशियन से ही गर्भाधान कराएं
- सही विधि से बीज डालना अत्यंत आवश्यक है
- अच्छी गुणवत्ता वाले जमे हुए वीर्य (Frozen Semen) का ही उपयोग करे ।
- वीर्य को सही तापमान पर पोस्ट थोइंग करना चाहिए
- बार–बार असफल गर्भाधान पर विशेषज्ञ से सलाह लें
-

गर्भाधान के बाद पशु की देखभाल

1. तुरंत आराम देना

- गर्भाधान के बाद पशु को 1–2 घंटे आराम दें
- दौड़ाना या लंबी दूरी तक ले जाना नहीं चाहिए
- पशु को फिसलन से बचाएं
- तुरंत स्नान या ठंडे पानी से न नहलाएं
- पशु को शांत एवं हवादार स्थान पर रखें

2. संतुलित एवं पौष्टिक आहार

- हरा चारा, सूखा चारा एवं खनिज मिश्रण अवश्य दें
- स्वच्छ एवं पर्याप्त पानी उपलब्ध कराएं
- अचानक आहार परिवर्तन से बचें
- प्रोटीन युक्त आहार सीमित मात्रा में दें
- मिनरल मिक्सचर नियमित रूप से खिलाएं
- फफूंद लगे या सड़े चारे से परहेज करें

3. तनाव से बचाव

- अत्यधिक दूध दुहने या कठिन परिश्रम से बचाएं
- परिवहन या बाजार ले जाने से कुछ दिन परहेज करें
- अन्य पशुओं से लड़ाई की स्थिति न बनने दें
- अचानक मौसम परिवर्तन से पशु को बचाएं
- लगातार बाँधकर रखने से बचें

4. रोगों से सुरक्षा

- बुखार, दस्त या गर्भाशय संक्रमण होने पर तुरंत पशु चिकित्सक से संपर्क करें
- समय–समय पर कृमिनाशक एवं टीकाकरण कराएं
- गर्भाधान के बाद दुर्गंधयुक्त स्राव पर विशेष ध्यान दें
- बाहरी व आंतरिक परजीवियों का नियंत्रण करें
- बीमार पशुओं से संपर्क सीमित रखें

5. गर्भ परीक्षण

- गर्भाधान के 60–90 दिन बाद गर्भ परीक्षण अवश्य कराएं

- इससे समय पर पुनः गर्भाधान की योजना बनाई जा सकती है
- प्रशिक्षित पशु चिकित्सक से ही गर्भ परीक्षण कराएं
- नकारात्मक परिणाम पर तुरंत पुनः योजना बनाएं
- गर्भ परीक्षण से अनावश्यक खर्च से बचाव होता है

निष्कर्ष

पशुओं में सफल गर्भाधान एक सतत प्रक्रिया का परिणाम है, जिसमें गर्भाधान से पहले, गर्भाधान के दौरान और गर्भाधान के बाद की देखभाल समान रूप से महत्वपूर्ण होती है। यदि पशु स्वस्थ, संतुलित आहार पर हो, तनाव–मुक्त वातावरण में रखा जाए और गर्भाधान के पश्चात उसे उचित आराम तथा पोषण मिले, तो गर्भधारण की सफलता की संभावना काफी बढ़ जाती है। गर्भाधान के बाद पशु को अनावश्यक दौड़–धूप, परिवहन, अत्यधिक श्रम या आहार में अचानक परिवर्तन से बचाना चाहिए। इसके साथ ही खनिज तत्वों की पूर्ति, रोगों की रोकथाम और समय पर गर्भ परीक्षण कराने से प्रजनन संबंधी समस्याओं की शीघ्र पहचान की जा सकती है। यह न केवल पशु के स्वास्थ्य की रक्षा करता है, बल्कि पशुपालक के समय, श्रम और धन की भी बचत करता है।

अंततः यह कहा जा सकता है कि गर्भाधान की सफलता किसी एक उपाय पर निर्भर नहीं करती, बल्कि यह किसान की जागरूकता, सावधानी और वैज्ञानिक दृष्टिकोण का परिणाम होती है। यदि पशुपालक गर्भाधान के दौरान और बाद में पशु की सही देखभाल करें, तो निश्चित रूप से स्वस्थ बछड़े की प्राप्ति होगी, दूध उत्पादन में वृद्धि होगी और पशुपालन एक स्थायी एवं लाभकारी व्यवसाय के रूप में विकसित होगा।

देशी गाय एवं भैंसों के नस्लों का चयनात्मक प्रजनन के द्वारा संरक्षण तथा विकास

जय प्रकाश गुप्ता

पशु आनुवंशिकी एवं प्रजनन विभाग, बिहार पशु चिकित्सा महाविद्यालय, बिहार एनिमल साइंस यूनिवर्सिटी, पटना

सारांश

भारत की स्वदेशी गाय एवं भैंस नस्लें स्थानीय जलवायु, सीमित चारा संसाधनों और बदलते पर्यावरण के अनुरूप विकसित हुई हैं, इसलिए ये पशु गर्मी, पानी की कमी और सामान्य रोगों को आसानी से सहन कर लेती हैं, जिससे किसानों को दवा–इलाज और रखरखाव पर कम खर्च करना पड़ता है और लंबे समय तक स्थिर लाभ मिलता है। अंधाधुंध एवं अवैज्ञानिक संकरण से जहां पशुओं की सहनशीलता घटती है, प्रजनन समस्याएँ बढ़ती हैं और लागत बढ़ जाती है, वहीं सुनियोजित चयनात्मक प्रजनन के माध्यम से अच्छी दूध देने वाली, समय पर बच्चा देने वाली, स्वस्थ और दीर्घायु गाय–भैंसों का चयन कर उसी नस्ल के श्रेष्ठ सांड के प्रमाणित वीर्य से गर्भाधान कराने पर नस्ल की शुद्धता बनी रहती है और उत्पादन में धीरे–धीरे स्थायी सुधार होता है। इसके साथ यदि किसान हरे–सूखे चारे, दाना और खनिज मिश्रण का संतुलित उपयोग करें, स्वच्छ पानी और साफ आवास उपलब्ध कराएँ तथा समय पर टीकाकरण और कृमिनाशक दवाओं का पालन करें, तो पशु स्वस्थ रहते हैं और उनकी दूध एवं प्रजनन क्षमता बेहतर होती है। साथ ही, सरकार की विभिन्न पशुपालन योजनाओं, प्रशिक्षण कार्यक्रमों, बीमा और नस्ल सुधार सेवाओं का लाभ उठाकर किसान न केवल अपनी आय बढ़ा सकते हैं, बल्कि स्वदेशी नस्लों के संरक्षण और विकास में भी महत्वपूर्ण योगदान दे सकते हैं, जिससे दीर्घकाल में टिकाऊ, कम लागत वाला और लाभकारी पशुपालन संभव हो पाता है।

सूचक शब्द: स्वदेशी नस्ल, गाय–भैंस पालन, चयनात्मक प्रजनन, दुग्ध उत्पादन, किसान आय

परिचय

भारत एक कृषि प्रधान देश है और यहाँ की अधिकतर आबादी आज भी खेती और पशुपालन पर निर्भर है। गाँवों में गाय और भैंस केवल दूध देने वाले पशु ही नहीं हैं, बल्कि वे परिवार की आर्थिक सुरक्षा, पोषण और सम्मान का प्रतीक भी हैं। दूध से मिलने वाली नियमित आय, गोबर से खाद और ईंधन, तथा पशुओं से जुड़ा रोजगार ग्रामीण जीवन को मजबूत बनाता है। ऐसे में देशी गाय एवं भैंस के नस्लों का संरक्षण और उनका वैज्ञानिक ढंग से विकास किसानों के लिए अत्यंत आवश्यक हो

जाता है।

देशी पशुओं का महत्त्व

भारत में सदियों से देशी नस्लों का पालन होता आ रहा है। भारत में विश्व की भैंसों की सर्वश्रेष्ठ नस्लें मिलती हैं। ये नस्लें स्थानीय जलवायु, चारे की उपलब्धता और रोगों के अनुसार अपने आप को ढाल चुकी हैं। साहीवाल, गिर, थारपारकर, बछौर, कंकरेज, हरियाणा जैसी गाय की नस्लें तथा मुर्रा, जाफराबादी, सुरती, मेहसाणा और नीली-रावी जैसी भैंस की नस्लें किसानों के लिए भरोसेमंद पशु रही हैं। इन पशुओं की खास बात यह है कि ये कम खर्च में भी ठीक-ठाक दूध देती हैं और बीमार भी कम पड़ती हैं।

विगत कुछ वर्षों में केवल अधिक दूध प्राप्त करने के उद्देश्य से देश के अनेक भागों में बिना वैज्ञानिक योजना और स्थानीय परिस्थितियों को समझे अंधाधुंध संकरण को बढ़ावा दिया गया। प्रारंभिक वर्षों में संकर पशुओं से दुग्ध उत्पादन में अवश्य वृद्धि दिखाई दी, जिससे किसानों को लगा कि यह तरीका अधिक लाभकारी है। किंतु समय के साथ इसके दुष्परिणाम सामने आने लगे। ऐसे पशु स्थानीय जलवायु, गर्मी और नमी को सहन नहीं कर पाए, जिसके कारण बार–बार बीमार पड़ने लगे। पशुओं में गर्भ न ठहरना, गर्भपात की समस्या, बच्चा जनने के बाद दुबारा गर्मी में न आना और लंबे समय तक खाली रहना जैसी प्रजनन संबंधी कठिनाइयाँ बढ़ती गईं।

इसके अतिरिक्त, इन पशुओं की रोग प्रतिरोधक क्षमता कम होने के कारण इलाज, दवाइयों और पशु चिकित्सक पर किसानों का खर्च लगातार बढ़ता गया। कई मामलों में पशु कम उम्र में ही दूध देना बंद कर देते हैं या उन्हें बेचने की नौबत आ जाती है, जिससे किसान को भारी आर्थिक नुकसान सहना पड़ता है। इसके विपरीत, देशी नस्लें कम दूध देने के बावजूद लंबे समय तक उत्पादक रहती हैं और कठिन परिस्थितियों में भी टिकाऊ सिद्ध होती हैं। इसलिए अब यह अत्यंत आवश्यक हो गया है कि हम केवल अधिक दूध के लालच में गलत प्रजनन न करें, बल्कि अपनी देशी नस्लों का संरक्षण करते हुए चयनात्मक प्रजनन के माध्यम से उनका सुधार करें, ताकि किसान को संतुलित दूध उत्पादन के साथ–साथ स्वस्थ और दीर्घायु पशु भी प्राप्त हो सकें।

गायों में चयनात्मक प्रजनन

देशी नस्लों के संरक्षण का वास्तविक अर्थ केवल पशुओं को जीवित रखना ही नहीं है, बल्कि उनकी शुद्ध पहचान बनाए रखना, उनकी संख्या को बढ़ाना और आने वाली पीढ़ियों के लिए सुरक्षित रखना भी है। इसके लिए सबसे पहले यह समझना आवश्यक है कि हमारे क्षेत्र में कौन–कौन सी देशी गाय और भैंस नस्लें पाई जाती हैं, उनकी पहचान कैसे की जाती है और उनमें क्या–क्या विशेष

गुण होते हैं। हर नस्ल की अपनी अलग पहचान होती हैकृजैसे शरीर की बनावट, रंग, सींग, कूबड़, कान, दूध की मात्रा, गर्मी सहने की क्षमता और बीमारियों से लड़ने की ताकत। जब किसान इन विशेषताओं को समझने लगते हैं, तभी सही संरक्षण संभव हो पाता है। यदि किसान बिना सोचे–समझे किसी भी नस्ल के सांड से गर्भाधान करा लेते हैं, तो नस्ल की शुद्धता धीरे–धीरे समाप्त हो जाती है। इसलिए यह बहुत जरूरी है कि गाय या भैंस का गर्भाधान उसी नस्ल के अच्छे और प्रमाणित सांड के वीर्य से कराया जाए। ऐसा करने से नस्ल के अच्छे गुण अगली पीढ़ी में सुरक्षित रहते हैं। इसी वैज्ञानिक तरीके को चयनात्मक प्रजनन कहा जाता है, जो देशी नस्लों के संरक्षण की पहली और सबसे मजबूत सीढ़ी है।

चयनात्मक प्रजनन दिखने में सरल लगता है, लेकिन इसका प्रभाव बहुत गहरा और लंबे समय तक रहने वाला होता है। इस पद्धति में किसान अपने पशु–समूह को ध्यान से देखते हैं और यह पहचानते हैं कि कौन–सी गाय या भैंस अधिक दूध देती है, समय पर गर्मी में आती है, आसानी से गर्भ ठहरा लेती है और बीमारियों से जल्दी नहीं घिरती। ऐसे पशु वास्तव में किसान के लिए अमूल्य होते हैं। इनके द्वारा पैदा हुए बछड़ों को भविष्य के लिए अलग से चिन्हित किया जाता है और उन्हें बेचने के बजाय पालने पर विशेष ध्यान दिया जाता है। धीरे–धीरे जब इन्हीं बछड़ों से आगे प्रजनन होता है, तो पूरे पशु–समूह की औसत गुणवत्ता सुधरने लगती है। सबसे बड़ी बात यह है कि इस प्रक्रिया में किसी महंगे उपकरण या तकनीक की आवश्यकता नहीं होती, बल्कि केवल सही जानकारी, नियमित निरीक्षण और धैर्य की जरूरत होती है।

दूध उत्पादन बढ़ाने के साथ–साथ प्रजनन स्वास्थ्य पर ध्यान देना किसानों के लिए अत्यंत आवश्यक है। यदि गाय या भैंस समय पर गर्भ धारण नहीं करती, तो दूध उत्पादन रुक जाता है और पशु पालने का खर्च बढ़ता जाता है। इसलिए यह देखना बहुत जरूरी है कि पशु पहली बार सही उम्र में बछड़े को जन्म दे, दो बछड़ों के बीच का अंतर बहुत अधिक न हो और गर्भ ठहरने में बार–बार समस्या न आए। जिन पशुओं में यह संतुलन बना रहता है, वे लंबे समय तक किसान को लाभ देते हैं। देशी नस्लों की सबसे बड़ी विशेषता यही है कि उनमें प्रजनन से जुड़ी समस्याएँ अपेक्षाकृत कम होती हैं। ये नस्लें कम देखभाल और साधारण चारे में भी नियमित रूप से बच्चा देती हैं और लंबे समय तक दूध उत्पादन करती रहती हैं। यही कारण है कि देशी नस्लों का संरक्षण और चयनात्मक प्रजनन किसानों के लिए सुरक्षित, लाभकारी और टिकाऊ पशुपालन का सबसे अच्छा रास्ता माना जाता है।

भैंसों में चयनात्मक प्रजनन

भैंस पालन की बात करें तो यह कहना बिल्कुल सही होगा कि भारत भैंसों का सबसे बड़ा देश है। देश के अधिकांश ग्रामीण क्षेत्रों में भैंस को गाय की तुलना में अधिक भरोसेमंद माना जाता है, क्योंकि भैंस का दूध गाढ़ा होता है, उसमें वसा की मात्रा अधिक होती है और बाजार में इसका मूल्य भी अच्छा मिलता है। भारत की मुर्रा भैंस आज केवल देश में ही नहीं, बल्कि पूरे विश्व में अपनी उच्च्च दुग्ध उत्पादन क्षमता और अच्छे प्रजनन गुणों के लिए प्रसिद्ध है। मुर्रा भैंस की यह सफलता किसी एक दिन की देन नहीं है, बल्कि यह किसानों और वैज्ञानिकों द्वारा वर्षों तक किए गए अच्छे पशुओं के चयन और शुद्ध प्रजनन का परिणाम है। जिन भैंसों ने अधिक दूध दिया, समय पर बच्चा दिया और कम बीमार पड़ीं, उन्हीं से आगे प्रजनन कराया गया। इसी निरंतर चयनात्मक प्रजनन से मुर्रा नस्ल आज एक आदर्श नस्ल के रूप में स्थापित हुई है।

यदि यही तरीका जाफराबादी, मेहसाणा, सुरती, नीली–रावी और अन्य देशी भैंस नस्लों में भी अपनाया जाए, तो इन नस्लों का दूध उत्पादन भी बढ़ाया जा सकता है और साथ–साथ उनकी अलग पहचान भी सुरक्षित रखी जा सकती है। प्रत्येक भैंस नस्ल की अपनी खासियत होती हैकृजाफराबादी भारी शरीर और अधिक वसा वाले दूध के लिए जानी जाती है, मेहसाणा नस्ल दुग्ध उत्पादन और अनुकूलन का अच्छा संतुलन रखती है, जबकि सुरती भैंस शांत स्वभाव और नियमित प्रजनन के लिए पहचानी जाती है। यदि किसान बिना सोचे–समझे संकरण कराते हैं, तो ये विशिष्ट गुण धीरे–धीरे समाप्त हो जाते हैं। इसलिए जरूरी है कि भैंसों का गर्भाधान उसी नस्ल के प्रमाणित सांड के वीर्य से कराया जाए और अच्छे बछड़ों को भविष्य के लिए सुरक्षित रखा जाए। इससे नस्ल की शुद्धता बनी रहती है और किसान को लंबे समय तक लाभ मिलता है।

सरकार भी अब देशी गाय और भैंस नस्लों के संरक्षण और विकास को लेकर गंभीर प्रयास कर रही है। राष्ट्रीय गोकुल मिशन के तहत गोकुल ग्रामों की स्थापना की जा रही है, जहाँ एक ही नस्ल के पशुओं का वैज्ञानिक तरीके से पालन, प्रजनन और संरक्षण किया जाता है। इसके अलावा राष्ट्रीय पशुधन मिशन और विभिन्न राज्य स्तरीय योजनाओं के माध्यम से किसानों को उत्तम नस्ल के सांडों का वीर्य, कृत्रिम गर्भाधान की सुविधा, प्रशिक्षण कार्यक्रम और आर्थिक सहायता उपलब्ध कराई जा रही है। इन योजनाओं का उद्देश्य केवल दूध उत्पादन बढ़ाना नहीं है, बल्कि देशी नस्लों को बचाकर उन्हें आर्थिक रूप से लाभकारी बनाना है।

किसानों के लिए यह अत्यंत आवश्यक है कि वे इन सरकारी योजनाओं की सही जानकारी प्राप्त करें और उनका पूरा लाभ उठाएँ। नजदीकी पशु चिकित्सालय, पशुपालन विभाग या कृषि

विज्ञान केंद्र से संपर्क कर किसान न केवल अच्छी नस्ल के वीर्य की सुविधा पा सकते हैं, बल्कि पशु प्रबंधन, पोषण और प्रजनन से जुड़ा प्रशिक्षण भी प्राप्त कर सकते हैं। यदि किसान सरकार की सहायता, वैज्ञानिक सलाह और अपने अनुभवकृतीनों को मिलाकर काम करें, तो भैंस पालन को अधिक लाभकारी बनाया जा सकता है और देशी नस्लों की पहचान भी आने वाली पीढ़ियों तक सुरक्षित रखी जा सकती है।

पोषण एवं प्रबंधन

पोषण और देखभाल किसी भी पशु नस्ल के संरक्षण और विकास का सबसे महत्वपूर्ण आधार हैं। चाहे गाय या भैंस की नस्ल कितनी ही अच्छी क्यों न हो, यदि उसे समय पर और संतुलित आहार, स्वच्छ पानी तथा साफ–सुथरा रहने का स्थान न मिले, तो वह अपनी पूरी क्षमता के अनुसार दूध नहीं दे पाएगी और न ही उसका प्रजनन सही ढंग से हो सकेगा। अक्सर देखा जाता है कि किसान अच्छी नस्ल का पशु तो खरीद लेते हैं, लेकिन उसके खान–पान और देखभाल पर पूरा ध्यान नहीं दे पाते, जिससे अपेक्षित लाभ नहीं मिल पाता। इसलिए यह समझना जरूरी है कि अच्छी नस्ल. सही पोषण. उचित देखभाल = अच्छा उत्पादन।

पशु के आहार में हरे चारे, सूखे चारे, दाने और खनिज मिश्रण का संतुलन बहुत जरूरी है। हरा चारा पशु को ताजगी और ऊर्जा देता है, सूखा चारा जुगाली और पाचन के लिए आवश्यक होता है, जबकि दाना दूध उत्पादन बढ़ाने में मदद करता है। इसके साथ–साथ खनिज मिश्रण और नमक देने से पशु में कैल्शियम, फॉस्फोरस और अन्य आवश्यक तत्वों की कमी नहीं होती, जिससे गर्भ ठहरने की क्षमता, दूध की मात्रा और पशु की सेहत बेहतर रहती है। साफ और पर्याप्त पानी भी उतना ही जरूरी है, क्योंकि बिना पानी के पशु न तो सही ढंग से दूध दे सकता है और न ही स्वस्थ रह सकता है।

देखभाल के अंतर्गत पशु का आवास साफ, हवादार और सूखा होना चाहिए। गंदगी और नमी से पशुओं में कई बीमारियाँ फैलती हैं। समय–समय पर टीकाकरण कराने से खुरपका–मुंहपका, गलघोंटू और लम्पी जैसी खतरनाक बीमारियों से बचाव होता है। वहीं, नियमित रूप से कृमिनाशक दवा देने से पेट के कीड़े नहीं पनपते और पशु की वृद्धि तथा उत्पादन पर बुरा असर नहीं पड़ता। इन छोटी–छोटी सावधानियों से पशु लंबे समय तक स्वस्थ और उपयोगी बना रहता है।

आज के समय में जलवायु परिवर्तन ने पशुपालन को और भी चुनौतीपूर्ण बना दिया है। बढ़ती गर्मी, अनियमित वर्षा, पानी की कमी और नई–नई बीमारियों के कारण कमजोर पशु जल्दी प्रभावित हो जाते हैं। ऐसे हालात में वही पशु टिक पाएँगे जो मजबूत, सहनशील और स्थानीय

परिस्थितियों के अनुरूप ढले हुए हों। देशी गाय और भैंस नस्लें इस दृष्टि से बहुत आगे हैं। ये नस्लें अधिक गर्मी सहन कर सकती हैं, कम पानी और साधारण चारे में भी जीवित रहकर उत्पादन देती हैं। यही कारण है कि भविष्य में टिकाऊ और सुरक्षित पशुपालन के लिए देशी नस्लों का संरक्षण और सही देखभाल किसानों के लिए सबसे समझदारी भरा निर्णय सिद्ध होगा।

अंत में यही कहा जा सकता है कि स्वदेशी गाय एवं भैंस नस्लों का संरक्षण, सुधार और चयनात्मक प्रजनन किसानों के लिए केवल आज का नहीं, बल्कि आने वाली पीढ़ियों का भी सुरक्षित रास्ता है। देशी नस्लें हमारे गांव, जलवायु और चारा–प्रणाली के अनुसार ढली हुई हैं। इसलिए इनमें बीमारी कम लगती है, दवा–इलाज पर खर्च कम आता है और पशु लंबे समय तक उत्पादन देते हैं। इससे किसान को हर साल स्थिर आय मिलती है और अचानक नुकसान का खतरा भी कम रहता है। चयनात्मक प्रजनन के माध्यम से यदि अच्छे सांड या उत्तम वीर्य का उपयोग किया जाए, तो धीरे–धीरे दूध उत्पादन, प्रजनन क्षमता और सहनशीलता में सुधार आता है। इसका लाभ यह होता है कि बिना ज्यादा खर्च बढ़ाए, किसान अपनी गाय–भैंस से बेहतर परिणाम ले सकता है। साथ ही, पशु स्वस्थ रहने से दूध की गुणवत्ता भी अच्छी होती है, जिससे बाजार में बेहतर दाम मिल सकते हैं। स्वदेशी नस्लों के संरक्षण से गांव की अर्थव्यवस्था मजबूत होती है। स्थानीय चारा, खेत के अवशेष और कम पानी में पलने वाले ये पशु छोटे और सीमांत किसानों के लिए बहुत उपयोगी हैं। गोबर से खाद और बायोगैस मिलती है, जिससे खेती की लागत घटती है और पर्यावरण भी सुरक्षित रहता है। इस तरह पशुपालन, खेती और पर्यावरण दृ तीनों का संतुलन बना रहता है।

इसलिए यह कहना गलत नहीं होगा कि स्वदेशी गाय और भैंस नस्लों पर आधारित पशुपालन ही भविष्य का टिकाऊ, लाभकारी और सुरक्षित मॉडल है। यही रास्ता किसान की आमदनी बढ़ाने, जोखिम घटाने और आने वाली पीढ़ियों के लिए मजबूत पशुधन छोड़ने की सही दिशा दिखाता है।

निष्कर्ष

देशी गाय और भैंस हमारे किसानों की असली पूँजी हैं। ये पशु कम खर्च में लंबे समय तक दूध देते हैं और बीमार भी कम पड़ते हैं। यदि किसान सही पशुओं का चयन कर, शुद्ध नस्ल में प्रजनन कराएँ और पशुओं की ठीक से देखभाल करें, तो दूध उत्पादन भी बढ़ेगा और नुकसान भी कम होगा। सरकार की योजनाओं और वैज्ञानिक सलाह के साथ मिलकर किया गया प्रयास ही पशुपालन को लाभकारी और टिकाऊ बना सकता है।

ब्याने से पहले और बाद में पशुओं की देखभाल एवं प्रबंधन

चन्द्र शेखर आजाद एवं दीपशिखा
पशुचिकित्सा प्रसूति शास्त्र एवं प्रसूति विज्ञान विभाग
बिहार पशुचिकित्सा महाविघालय, पटना

सारांश

ब्याना पशु के जीवन का एक अत्यंत महत्वपूर्ण चरण होता है। इस समय की गई थोड़ी–सी लापरवाही माँ और बछड़े दोनों के स्वास्थ्य पर प्रतिकूल प्रभाव डाल सकती है। यदि ब्याने से पहले पशु को संतुलित आहार, स्वच्छ आवास और उचित देखभाल मिले तथा ब्याने के बाद सही प्रबंधन अपनाया जाए, तो दूध उत्पादन, बछड़े की जीवितता और भविष्य की प्रजनन क्षमता में उल्लेखनीय सुधार किया जा सकता है। यह लेख किसानों को सरल भाषा में ब्याने से पहले और बाद में पशुओं की वैज्ञानिक देखभाल की जानकारी प्रदान करता है।

सूचक शब्द : संतुलित आहार, पशु प्रबंधन, गर्भाशय

परिचय

डेयरी पशुपालन में सफल ब्याना, पशु की स्वस्थ एवं उत्पादकता की आधारशिला होती है। ब्याने से लगभग तीन सप्ताह पहले और ब्याने के तीन सप्ताह बाद का समय पशु के लिए अत्यंत संवेदनशील माना जाता है। इस अवधि में पशु के शरीर में हार्मोनल, पोषण संबंधी और शारीरिक परिवर्तन होते हैं। यदि इस समय पशु को सही देखभाल न मिले, तो दुग्ध ज्वर, गर्भाशय संक्रमण, जड़ का रुकना, दूध उत्पादन में कमी तथा पुनः गर्भधारण में देरी जैसी समस्याएँ उत्पन्न हो सकती हैं।

अधिकांश किसान गर्भावस्था के दौरान तो पशु की देखभाल करते हैं, परंतु ब्याने के तुरंत बाद उचित प्रबंधन पर पर्याप्त ध्यान नहीं देते। वास्तव में, ब्याने के बाद की देखभाल पशु के भविष्य के उत्पादन और प्रजनन दोनों को प्रभावित करती है। इसलिए पशुपालकों के लिए यह आवश्यक है कि वे ब्याने से पहले और बाद की देखभाल के वैज्ञानिक तरीकों को अपनाएँ।

ब्याने से पहले पशुओं की देखभाल

1. गर्भावस्था के अंतिम चरण की पहचान

- थनों का आकार बढ़ना एवं दूध उतरने की शुरुआत।

- योनि में सूजन और शिथिलता।
- पूँछ के पास स्नायुबंधों का ढीलापन।
- पशु का बेचैन होना और बार–बार उठना–बैठना।
- भूख में हल्की कमी या आहार चयन में बदलाव।
- बार–बार पूँछ हिलाना और पेट की ओर देखना।
- अकेले रहने की प्रवृत्ति दिखाई देना।

2. संतुलित आहार एवं पोषण

- पर्याप्त मात्रा में हरा व सूखा चारा दें।
- खनिज मिश्रण और सामान्य नमक नियमित दें।
- अत्यधिक दाना खिलाने से बचें।
- स्वच्छ और भरपूर पानी उपलब्ध कराएँ।
- कैल्शियम–फॉस्फोरस संतुलन का विशेष ध्यान रखें।
- फफूँद लगे या सड़े चारे से पूर्णतः बचें।
- ब्याने से कुछ दिन पहले अत्यधिक रसीला चारा न दें।

3. आवास एवं स्वच्छता प्रबंधन

- ब्याने से 10दृ15 दिन पहले अलग साफ स्थान पर रखें।
- बिछावन सूखी और नरम होनी चाहिए।
- फर्श फिसलन–रहित हो।
- स्थान को कीटाणुनाशक से साफ रखें।
- पर्याप्त रोशनी और हवा की व्यवस्था हो।
- मक्खी–मच्छर नियंत्रण पर विशेष ध्यान दें।
- पानी और चारे के बर्तन प्रतिदिन साफ करें।

4. स्वास्थ्य एवं तनाव प्रबंधन

- अनावश्यक दौड़–भाग और परिवहन से बचाएँ।
- अन्य आक्रामक पशुओं से दूर रखें।
- समय पर टीकाकरण और कृमिनाशन कराएँ।
- पशु पर नियमित निगरानी रखें।
- अचानक मौसम परिवर्तन से पशु को बचाएँ।

- जोर–जबरदस्ती या मार–पीट बिल्कुल न करें।
- किसी भी असामान्य लक्षण पर तुरंत सलाह लें।

ब्याने के बाद पशुओं की देखभाल

1. ब्याने के तुरंत बाद की देखभाल

- पशु को शांत वातावरण में आराम दें।
- गुनगुना पानी या गुड़ मिला पानी पिलाएँ।
- पशु के पिछले भाग को साफ करें।
- प्लेसेंटा निकलने पर ध्यान दें।
- तुरंत ठंडे पानी से न नहलाएँ।
- पशु को फिसलन से बचाएँ।
- अत्यधिक भीड़ या शोर से दूर रखें।

2. आहार एवं दुग्ध उत्पादन प्रबंधन

- हल्का और सुपाच्य आहार देना शुरू करें।
- धीरे–धीरे दाना की मात्रा बढ़ाएँ।
- हरा चारा और खनिज मिश्रण नियमित दें।
- अचानक आहार परिवर्तन से बचें।
- दूध उत्पादन के अनुसार दाना संतुलित रखें।
- पर्याप्त ऊर्जा युक्त आहार दें।
- पानी की कमी न होने दें।

3. स्वास्थ्य सुरक्षा

- जड़ यदि 12 घंटे में न निकले तो चिकित्सक से संपर्क करें।
- दुग्ध ज्वर, गर्भाशय संक्रमण के लक्षणों पर ध्यान दें।
- थनों की सफाई कर नियमित दुग्ध दुहन करें।
- बुखार या भूख न लगने पर तुरंत उपचार कराएँ।
- दुर्गंधयुक्त स्राव पर तुरंत ध्यान दें।
- थनैला (मास्टाइटिस) की नियमित जांच कराये।
- बीमार पशुओं से संपर्क सीमित रखें।

4. बछड़े की प्रारंभिक देखभाल

- जन्म के तुरंत बाद नाक–मुँह साफ करें।
- 1दृ2 घंटे के भीतर खीस (कोलोस्ट्रम) पिलाएँ।
- नाभि को आयोडीन से साफ करें।
- बछड़े को सूखे व गर्म स्थान पर रखें।
- ठंड के मौसम में बछड़े को ढक कर रखें।
- बछड़े को फिसलन वाली जगह पर न रखें।
- पर्याप्त मात्रा में खीस पिलाना सुनिश्चित करें।

5. भविष्य की प्रजनन योजना

- गर्भाशय की सामान्य स्थिति पर निगरानी रखें।
- 45दृ60 दिन बाद हीट निरीक्षण शुरू करें।
- स्वस्थ अवस्था में ही पुनः गर्भाधान कराएँ।
- हीट रिकॉर्ड रखना लाभकारी होता है।
- प्रजनन से पहले पशु का स्वास्थ्य परीक्षण कराएँ।
- बार–बार गर्भ न ठहरने पर विशेषज्ञ से परामर्श लें।

निष्कर्ष

ब्याने से पहले और बाद में पशुओं की सही देखभाल एवं वैज्ञानिक प्रबंधन अपनाने से माँ और बछड़े दोनों का स्वास्थ्य सुरक्षित रहता है। इससे न केवल दूध उत्पादन में वृद्धि होती है, बल्कि पशु की भविष्य की प्रजनन क्षमता भी बेहतर बनी रहती है। यदि किसान संतुलित आहार, स्वच्छ आवास, समय पर स्वास्थ्य देखभाल और तनाव–मुक्त वातावरण प्रदान करें, तो अधिकांश प्रसवोत्तर समस्याओं से बचा जा सकता है। सही प्रबंधन अपनाकर पशुपालन को अधिक लाभकारी और टिकाऊ बनाया जा सकता है।

गाय–भैंस में प्रमुख रोगों के विरुद्ध टीकाकरण

मृत्युंजय कुमार एवं आशीष त्रिपाठी

पशु औषधि विभाग

बिहार वेटरिनरी कॉलेज, बिहार पशु विज्ञान विश्वविद्यालय, पटना

भारत एक कृषि एवं पशुपालन प्रधान देश है, जहाँ गाय और भैंस दुग्ध उत्पादन, कृषि कार्य तथा ग्रामीण अर्थव्यवस्था की रीढ़ मानी जाती हैं। पशुधन से प्राप्त दूध, मांस, खाद एवं आय के कारण पशुपालकों की आजीविका सीधे पशु–स्वास्थ्य पर निर्भर करती है। परंतु संक्रामक रोगों की उपस्थिति पशुधन उत्पादन में भारी आर्थिक हानि का कारण बनती है। विशेष रूप से हेमोरैजिक सेप्टीसीमिया (गलाघोंटू), ब्लैक क्वार्टर (लंगड़ा रोग), फुट एंड माउथ डिजीज (खुरपका–मुंहपका), एन्थ्रेक्स (गिल्टी रोग) तथा ब्रुसेलोसिस जैसे रोग गाय–भैंसों में व्यापक रूप से पाए जाते हैं और उच्च मृत्यु दर, दुग्ध उत्पादन में कमी, प्रजनन समस्याएँ तथा व्यापारिक प्रतिबंध उत्पन्न करते हैं। इन रोगों की रोकथाम के लिए उपचार की तुलना में टीकाकरण सबसे प्रभावी, सुरक्षित एवं किफायती उपाय है।

टीकाकरण का मूल सिद्धांत यह है कि पशु के शरीर में कमजोर या निष्क्रिय रोगजनक प्रविष्ट कराकर प्रतिरक्षा तंत्र को सक्रिय किया जाए, जिससे भविष्य में वास्तविक संक्रमण होने पर शरीर रोग से लड़ सके। नियमित और समयबद्ध टीकाकरण से न केवल व्यक्तिगत पशु सुरक्षित रहता है, बल्कि झुंड में सामूहिक प्रतिरक्षा विकसित होती है, जिससे रोग का प्रसार नियंत्रित हो जाता है।

हेमोरैजिक सेप्टीसीमिया एक तीव्र जीवाणुजन्य रोग है, जो मुख्यतः बरसात के मौसम में फैलता है। यह रोग भैंसों में अधिक घातक पाया जाता है तथा अचानक मृत्यु का प्रमुख कारण बनता है। रोग की शुरुआत तेज बुखार, गले एवं जबड़े के नीचे सूजन, सांस लेने में कठिनाई तथा अंततः सेप्टीसीमिया से मृत्यु के रूप में होती है। चूँकि रोग की प्रगति अत्यंत तीव्र होती है, इसलिए उपचार से अधिक महत्वपूर्ण इसका पूर्व–नियोजित टीकाकरण है। वैक्सीन देने से मृत्यु दर में उल्लेखनीय कमी आती है तथा मानसून के दौरान होने वाले प्रकोप को रोका जा सकता है।

ब्लैक क्वार्टर एक अन्य गंभीर जीवाणुजन्य रोग है, जो प्रायः 6 माह से 2 वर्ष आयु के युवा पशुओं में देखा जाता है। यह रोग विशेष रूप से अच्छी शारीरिक स्थिति वाले पशुओं में पाया जाता है। इसमें मांसपेशियों में सूजन, दर्द, चरचराहट की आवाज तथा लंगड़ापन प्रमुख लक्षण होते हैं।

रोग की तीव्रता इतनी अधिक होती है कि कई बार पशु कुछ ही घंटों में मर जाता है। ब्लैक क्वार्टर का उपचार सीमित प्रभावी होता है, इसलिए इसका नियंत्रण मुख्यतः वार्षिक टीकाकरण द्वारा ही संभव है।

फुट एंड माउथ डिजीज एक अत्यधिक संक्रामक वायरल रोग है, जो सभी खुर वाले पशुओं को प्रभावित करता है। यह रोग सीधे मृत्यु दर तो कम उत्पन्न करता है, परंतु दुग्ध उत्पादन में भारी गिरावट, कार्य क्षमता में कमी, प्रजनन संबंधी समस्याएँ तथा बछड़ों में हृदय संबंधी जटिलताओं के कारण अत्यधिक आर्थिक नुकसान पहुँचाता है। इस वायरस का प्रसार बहुत तेजी से होता है और यह हवा, संपर्क तथा दूषित सामग्री के माध्यम से फैल सकता है। इसलिए इस रोग के नियंत्रण के लिए हर 6 माह पर नियमित टीकाकरण अत्यंत आवश्यक है। राष्ट्रीय स्तर पर नियंत्रण कार्यक्रम के अंतर्गत सामूहिक टीकाकरण अभियान चलाए जाते हैं।

ब्रुसेलोसिस एक दीर्घकालिक जीवाणुजन्य रोग है, जो प्रजनन तंत्र को प्रभावित करता है। यह रोग बार–बार गर्भपात, बांझपन, दुग्ध उत्पादन में कमी तथा नर पशुओं में वृषण सूजन का कारण बनता है। यह एक जूनोटिक रोग है, अर्थात संक्रमित पशुओं से मनुष्यों में भी फैल सकता है, जिससे यह सार्वजनिक स्वास्थ्य की दृष्टि से भी अत्यंत महत्वपूर्ण हो जाता है। ब्रुसेलोसिस का कोई प्रभावी उपचार उपलब्ध नहीं है, इसलिए इसका नियंत्रण मुख्यतः टीकाकरण, परीक्षण एवं संक्रमित पशुओं की पहचान पर आधारित है। इस रोग के लिए केवल मादा बछियों को कम आयु में एक बार टीका लगाया जाता है।

एन्थ्रेक्स एक गंभीर, तीव्र तथा प्रायः घातक संक्रामक रोग है, जो मुख्यतः पशुओं (विशेषकर गाय–भैंस, भेड़, बकरी) को प्रभावित करता है तथा यह जूनोटिक रोग होने के कारण मनुष्यों में भी फैल सकता है। यह रोग ठंबपससने ंदजीतंबपे नामक जीवाणु से होता है, जो स्पोर (बीजाणु) बनाता है। ये स्पोर मिट्टी में कई वर्षों तक जीवित रह सकते हैं और अनुकूल परिस्थितियों में पशुओं में संक्रमण का कारण बनते हैं। एन्थ्रेक्स का संक्रमण प्रायः दूषित चारा, पानी या मिट्टी के माध्यम से होता है। अचानक तेज बुखार, भूख न लगना, सुस्ती, सांस लेने में कठिनाई, तथा अचानक मृत्यु इसके प्रमुख लक्षण हैं। मृत पशु के प्राकृतिक छिद्रों (नाक, मुंह, गुदा) से काला, न जमने वाला रक्त निकलना इस रोग की विशिष्ट पहचान मानी जाती है। एन्थ्रेक्स में शव को खोलना (पोस्टमार्टम) अत्यंत खतरनाक होता है क्योंकि इससे स्पोर फैलने का जोखिम बढ़ जाता है।

रोग का नियंत्रण मुख्यतः टीकाकरण, संक्रमित पशुओं का पृथक्करण, सुरक्षित निस्तारण (गड्ढे में गहराई से दफन व चूना–फिनाइल का प्रयोग) तथा प्रभावित क्षेत्र में पशु आवागमन पर नियंत्रण से

किया जाता है। उपचार सीमित प्रभावी होता है क्योंकि रोग बहुत तेजी से बढ़ता है, इसलिए रोकथाम ही सर्वोत्तम उपाय है।

इस प्रकार स्पष्ट है कि गाय–भैंसों में इन प्रमुख रोगों से सुरक्षा हेतु वैज्ञानिक एवं सुव्यवस्थित टीकाकरण कार्यक्रम अपनाना अनिवार्य है। समय पर टीकाकरण से पशुधन की उत्पादकता बढ़ती है, रोगजन्य नुकसान कम होता है तथा पशुपालकों की आय में स्थिरता आती है।

गाय–भैंस में टीकाकरण अनुसूची

रोग का नाम	टीके का प्रकार	पहली खुराक की आयु	पुनः टीकाकरण	उपयुक्त टीकाकरण महीने
हेमोरैजिक सेप्टीसीमिया (गलाघोंटू)	इनएक्टिवेटेड – ऑयल एडजुवेंट	6 माह	हर वर्ष	अप्रैल – मई (मानसून से पहले)
ब्लैक क्वार्टर (लंगड़ा रोग)	इनएक्टिवेटेड वैक्सीन	6 माह	हर वर्ष	अप्रैल –मई (मानसून से पहले)
फुट एंड माउथ डिजीज (खुरपका–मुंहपका)	इनएक्टिवेटेड वायरल वैक्सीन	4 माह	प्राथमिक टीकाकरण–1 माह बूस्टर –हर 6 माह	मार्च–अप्रैल (मानसून से पहले) एवं सितंबर–अक्टूबर
ब्रुसेलोसिस (गर्भपात रोग)	एस–19 लाइव वैक्सीन	4–8 माह (केवल मादा बछिया)	जीवन में केवल एक बार	वर्ष भर
एन्थ्रेक्स (गिल्टी रोग)	लाइव स्पोर वैक्सीन	6 माह	प्रत्येक वर्ष (जोखिम वाले क्षेत्रों)	अप्रैल – मई (मानसून से पहले)

टीकाकरण के दौरान याद रखने योग्य बातें

क्या करें

- केवल स्वस्थ पशुओं का ही टीकाकरण करें।
- टीकाकरण से पहले पशु का तापमान और सामान्य स्वास्थ्य जाँच लें।
- वैक्सीन को हमेशा 2–8°सेल्सियस तापमान पर कोल्ड–चेन में रखें।
- उपयोग से पहले वैक्सीन की एक्सपायरी डेट अवश्य जाँचें।
- निर्धारित आयु और समय–सारिणी के अनुसार टीकाकरण करें।
- झुंड के सभी पशुओं का एक साथ टीकाकरण करें।
- वैक्सीन को केवल प्रशिक्षित पशुचिकित्सक, पैरावेट से ही लगवाएँ।
- इंजेक्शन लगाने से पहले सिरिंज और सुई को स्वच्छ / स्टरल रखें।

- टीकाकरण के बाद पशु को कुछ समय निगरानी में रखें।
- टीकाकरण का रिकॉर्ड (तारीख, वैक्सीन का नाम) सुरक्षित रखें।

क्या न करें

- बीमार, तेज बुखार या अत्यधिक कमजोर पशु को टीका न लगाएँ।
- गर्भवती पशुओं में ब्रूसेलोसिस वैक्सीन कभी न दें।
- एक्सपायर्ड या खराब रखी गई वैक्सीन का उपयोग न करें।
- वैक्सीन को धूप, गर्मी या खुले स्थान में न रखें।
- टीकाकरण के तुरंत बाद पशु पर अधिक कार्यभार न डालें।
- बिना पशुचिकित्सक की सलाह के एक से अधिक वैक्सीन एक साथ न दें।
- वैक्सीन को हिलाकर या फेंटकर अनावश्यक रूप से न मिलाएँ।
- खुले हुए वैक्सीन वायल को अगले दिन उपयोग न करें।
- टीकाकरण के समय गंदे या कुंद सुई का प्रयोग न करें।
- टीकाकरण के बाद होने वाली हल्की सूजन या बुखार को अनदेखा न करें।

गाय एवं भैंस में थनैला रोग (मैस्टाइटिस)

मृत्युंजय कुमार एवं विवेक कृति
पशु औषधि विभाग
बिहार वेटरिनरी कॉलेज, बिहार पशु विज्ञान विश्वविद्यालय, पटना

थनैला रोग गाय एवं भैंसों का एक अत्यंत महत्वपूर्ण एवं व्यापक रूप से पाया जाने वाला रोग है, जो दुग्ध ग्रंथि (थन) की सूजन से संबंधित होता है। यह रोग दुग्ध उत्पादन, दूध की गुणवत्ता तथा पशुपालक की आर्थिक स्थिति पर गंभीर प्रतिकूल प्रभाव डालता है। भारत जैसे विकासशील देशों में, जहाँ दुग्ध व्यवसाय ग्रामीण अर्थव्यवस्था का प्रमुख आधार है, थनैला रोग से होने वाली हानियाँ अत्यधिक महत्त्वपूर्ण मानी जाती हैं। इस रोग के कारण दूध उत्पादन में कमी, दूध का त्याग, उपचार पर खर्च, पशु का शीघ्र निष्कासन (culling) तथा श्रम लागत में वृद्धि होती है। भैंसों में थनैला रोग प्रायः गायों की तुलना में कम दिखाई देता है, किंतु उप–नैदानिक थनैला रोग भैंसों में भी व्यापक रूप से पाया जाता है और यह छिपी हुई आर्थिक हानि का प्रमुख कारण है।

थनैला रोग में थन की सूजन

कारण

थनैला रोग मुख्यतः जीवाणुओं द्वारा उत्पन्न रोग है, हालांकि कुछ मामलों में फफूंद, माइकोप्लाज्मा, शैवाल तथा विषाणु भी इसके लिए उत्तरदायी हो सकते हैं। संक्रमण के स्रोत के आधार पर थनैला रोग को दो प्रमुख वर्गों में विभाजित किया जाता है, संक्रामक थनैला रोग तथा पर्यावरणीय थनैला रोग। संक्रामक थनैला रोग के कारक जीवाणु सामान्यतः संक्रमित थन या थन की त्वचा पर रहते हैं और दुहाई के समय एक पशु से दूसरे पशु में फैलते हैं। इस श्रेणी के प्रमुख

जीवाणुओं में स्टैफाइलोकोकस ऑरियस, स्ट्रेप्टोकोकस एग्लैक्टिया तथा माइकोप्लाज्मा प्रजातियाँ शामिल हैं। पर्यावरणीय थनैला रोग के जीवाणु पशु के आवास, बिछावन, गोबर, मिट्टी एवं पानी में पाए जाते हैं, जिनमें ई. कोलाई, स्ट्रेप्टोकोकस यूबेरिस एवं स्ट्रेप्टोकोकस डिसगैलेक्टिया प्रमुख हैं।

नैदानिक स्वरूप के आधार पर थनैला रोग को नैदानिक थनैला रोग, उप–नैदानिक थनैला रोग, दीर्घकालिक (क्रॉनिक) थनैला रोग तथा तीव्र या विषाक्त (पेरएक्यूट) थनैला रोग में वर्गीकृत किया जाता है।

रोगजनन

थनैला रोग की शुरुआत तब होती है जब रोगजनक जीवाणु थनाग्र के माध्यम से दुग्ध ग्रंथि में प्रवेश कर जाते हैं। दुहाई के बाद थनाग्र की मांसपेशियाँ कुछ समय तक शिथिल रहती हैं, जिससे जीवाणुओं का प्रवेश आसान हो जाता है। थन में चोट, दरारें, अनुचित दुहाई विधियाँ, गंदा वातावरण तथा कमजोर प्रतिरक्षा प्रणाली संक्रमण के जोखिम को बढ़ा देती हैं। दुग्ध ग्रंथि में प्रवेश करने के बाद जीवाणु तीव्रता से बढ़ते हैं और विषैले पदार्थ उत्पन्न करते हैं, जिससे शरीर की प्रतिरक्षा प्रतिक्रिया सक्रिय हो जाती है। श्वेत रक्त कोशिकाएँ बड़ी संख्या में थन में पहुँचती हैं, जिससे दूध में सोमैटिक सेल काउंट बढ़ जाता है।

सूजन के कारण दुग्ध ग्रंथि की रक्त वाहिकाओं की पारगम्यता बढ़ जाती है, जिससे सूजन, दर्द तथा दूध की संरचना में परिवर्तन होता है। दुग्ध स्राव करने वाली कोशिकाओं को क्षति पहुँचने से लैक्टोज, वसा तथा प्रोटीन का निर्माण प्रभावित होता है और दूध उत्पादन घट जाता है। गंभीर मामलों में जीवाणु विष रक्त प्रवाह में प्रवेश कर जाते हैं, जिससे पूरे शरीर में विषाक्त प्रभाव उत्पन्न हो सकते हैं।

नैदानिक लक्षण

थनैला रोग के लक्षण रोग की तीव्रता एवं प्रकार पर निर्भर करते हैं। नैदानिक थनैला रोग में दूध में स्पष्ट परिवर्तन दिखाई देते हैं, जैसे दूध में थक्के, फ्लेक्स पानी जैसा पतलापन, मवाद या रक्त की उपस्थिति। प्रभावित थन चौथाई सूजी हुई, गर्म, दर्दयुक्त तथा कठोर हो जाती है। पशु में बुखार, भूख में कमी तथा दूध उत्पादन में अचानक गिरावट देखी जाती है।

उप–नैदानिक थनैला रोग में थन या दूध में कोई स्पष्ट परिवर्तन नहीं दिखाई देता, किंतु दूध उत्पादन घट जाता है और दूध की गुणवत्ता खराब हो जाती है। यही कारण है कि यह रूप अधिक खतरनाक माना जाता है, क्योंकि यह लंबे समय तक बिना पहचाने बना रहता है। दीर्घकालिक थनैला रोग में थन ऊतक में रेशेदार परिवर्तन हो जाते हैं, जिससे थन सिकुड़ जाता है और स्थायी

क्षति हो जाती है। पेरएक्यूट थनैला रोग में अचानक गंभीर लक्षण प्रकट होते हैं, जैसे तेज बुखार, कमजोरी, दस्त, निर्जलीकरण, पशु का गिर जाना तथा कभी–कभी मृत्यु भी हो सकती है।

निदान

थनैला रोग के सफल नियंत्रण के लिए समय पर सटीक निदान अत्यंत आवश्यक है। नैदानिक थनैला रोग का पता थन एवं दूध की जांच से लगाया जा सकता है। उप–नैदानिक थनैला रोग के लिए विशेष परीक्षणों की आवश्यकता होती है। कैलिफोर्निया मैस्टाइटिस टेस्ट एक सरल एवं व्यापक रूप से प्रयुक्त फील्ड टेस्ट है, जिससे दूध में सोमैटिक सेल काउंट का अनुमान लगाया जाता है। इसके अतिरिक्त व्हाइट साइड टेस्ट तथा सर्फ फील्ड मैस्टाइटिस टेस्ट भी उपयोगी हैं।

प्रयोगशाला में दूध की जीवाणु संवर्धन द्वारा रोगजनक की पहचान की जाती है, जिसे थनैला रोग के निदान का स्वर्ण मानक माना जाता है। एंटीबायोटिक संवेदनशीलता परीक्षण से उपयुक्त औषधि के चयन में सहायता मिलती है। बड़े डेयरी फार्मों में सोमैटिक सेल काउंट का नियमित आकलन थन स्वास्थ्य की निगरानी के लिए किया जाता है।

उपचार

थनैला रोग का उपचार रोग की गंभीरता एवं कारण पर निर्भर करता है। हल्के से मध्यम नैदानिक थनैला रोग में उपयुक्त एंटीबायोटिक का इंट्रामैमरी इन्फ्यूजन सामान्यतः प्रभावी होता है। थनाग्र की उचित सफाई एवं कीटाणुनाशन के बाद ही औषधि का प्रयोग किया जाना चाहिए। गंभीर मामलों में प्रणालीगत एंटीबायोटिक उपचार आवश्यक होता है।

सहायक उपचार में दर्द एवं सूजन कम करने के लिए नॉन–स्टेरॉयडल एंटी–इन्फ्लेमेटरी ड्रग्स, निर्जलीकरण सुधारने हेतु तरल चिकित्सा, तथा एंटीहिस्टामिनिक दवाओं का प्रयोग किया जाता है। प्रभावित थन की बार–बार दुहाई से विषैले पदार्थों को बाहर निकालने में सहायता मिलती है। दीर्घकालिक थनैला रोग में उपचार की सफलता सीमित होती है और ऐसे पशुओं को झुंड से हटाना अधिक उपयुक्त माना जाता है। ड्राई पीरियड में दी जाने वाली दीर्घकालिक एंटीबायोटिक थेरेपी अत्यंत प्रभावी मानी जाती है।

रोकथाम एवं नियंत्रण

थनैला रोग की रोकथाम एवं नियंत्रण के लिए समन्वित प्रबंधन रणनीति अपनाना आवश्यक है। दुहाई से पहले थनों की उचित सफाई एवं दुहाई के बाद टिट डिपिंग थनैला रोग नियंत्रण का सबसे महत्वपूर्ण उपाय है। स्वच्छ आवास, सूखा बिछावन, गोबर का उचित निपटान एवं स्वच्छ

पानी की उपलब्धता पर्यावरणीय संक्रमण को कम करती है।

संतुलित आहार, विशेषकर विटामिन ई एवं सेलेनियम की पर्याप्त मात्रा, पशु की प्रतिरक्षा शक्ति को बढ़ाती है। संक्रमित पशुओं को अलग दुहना, क्रॉनिक मामलों को हटाना तथा मिल्किंग मशीनों की नियमित सफाई अत्यंत आवश्यक है। कुछ क्षेत्रों में उपलब्ध मैस्टाइटिस वैक्सीन रोग की तीव्रता को कम करने में सहायक हो सकती है, किंतु यह अच्छे प्रबंधन का विकल्प नहीं है।

निष्कर्ष

गाय एवं भैंस में थनैला रोग एक जटिल एवं बहु–कारक रोग है, जो दुग्ध उत्पादन पर गंभीर प्रभाव डालता है। इसकी सफल रोकथाम एवं नियंत्रण के लिए शीघ्र निदान, उचित उपचार तथा प्रभावी प्रबंधन उपायों का समन्वय आवश्यक है। विशेष रूप से उप–नैदानिक थनैला रोग पर ध्यान देना अत्यंत आवश्यक है, क्योंकि यह बिना स्पष्ट लक्षणों के भारी आर्थिक हानि करता है। स्वच्छ दुहाई, नियमित परीक्षण, संतुलित पोषण एवं पशुपालकों में जागरूकता मैस्टाइटिस नियंत्रण की कुंजी है।

दुग्धारु पशुओं में संक्रमण काल कारण शरीर में बदलाव समस्याएँ और प्रसव के बाद उत्पादन पर प्रभाव

सोनिका वर्मा एवं प्रभजोत कौर

बिहार वेटरिनरी कॉलेज, बिहार पशु विज्ञान विश्वविद्यालय, पटना

संक्रमण काल

संक्रमण काल वह समय होता है जब गाय या भैंस गर्भावस्था के अंतिम चरण से निकलकर दूध देने की अवस्था में प्रवेश करती है। इसे सामान्यतः प्रसव से तीन सप्ताह पहले और प्रसव के तीन सप्ताह बाद तक माना जाता है। यह अवधि छोटी जरूर है लेकिन इसका प्रभाव पूरे दुग्ध उत्पादन चक्र पर पड़ता है। इस समय पशु के शरीर में अचानक बहुत बड़े बदलाव होते हैं। पहले उसका शरीर केवल गर्भ में पल रहे बछड़े को पोषण देने पर केंद्रित होता है लेकिन प्रसव के तुरंत बाद उसे बड़ी मात्रा में दूध बनाना शुरू करना पड़ता है। दूध उत्पादन के लिए बहुत अधिक ऊर्जा प्रोटीन और खनिजों की जरूरत होती है। यही कारण है कि यह समय पशु के लिए सबसे ज्यादा चुनौतीपूर्ण होता है। यदि इस अवधि में पशु को सही पोषण और देखभाल नहीं मिलती तो वह कई प्रकार की बीमारियों का शिकार हो सकता है और उसका दूध उत्पादन भी कम हो सकता है। इसलिए संक्रमण काल को डेयरी प्रबंधन का सबसे महत्वपूर्ण चरण माना जाता है।

प्रसव काल में दुधारू पशु के शरीर में होने वाले बदलाव

संक्रमण काल के दौरान पशु के शरीर में शारीरिक हार्मोनल और उपापचयी स्तर पर कई महत्वपूर्ण बदलाव होते हैं। ये बदलाव इसलिए होते हैं ताकि शरीर गर्भावस्था से दुग्ध उत्पादन की अवस्था में आसानी से बदल सके। प्रसव के समय हार्मोन का स्तर तेजी से बदलता है। गर्भावस्था में प्रोजेस्टेरोन हार्मोन अधिक होता है जो गर्भ को बनाए रखने में मदद करता है। लेकिन जैसे ही प्रसव नजदीक आता है इसका स्तर घट जाता है और एस्ट्रोजन तथा कॉर्टिसोल बढ़ जाते हैं। यह बदलाव प्रसव को शुरू करने और शरीर को दूध उत्पादन के लिए तैयार करने में मदद करता है। इसके साथ ही वृद्धि हार्मोन का प्रभाव भी बढ़ता है जो शरीर में वसा के टूटने को बढ़ावा देता है। इंसुलिन की संवेदनशीलता कम हो जाती है जिससे शरीर ऊर्जा का उपयोग अलग तरीके से करने लगता है। ये सभी परिवर्तन मिलकर शरीर को दूध उत्पादन के लिए तैयार करते हैं लेकिन साथ ही कई समस्याओं की शुरुआत भी यहीं से होती है।

ऊर्जा की कमी क्यों होती है और यह पशु को कैसे प्रभावित करती है

संक्रमण काल में सबसे बड़ी समस्या ऊर्जा की कमी होती है जिसे ऋणात्मक ऊर्जा संतुलन कहा जाता है। इसका मतलब है कि पशु जितनी ऊर्जा खा रहा है, उससे ज्यादा ऊर्जा खर्च कर रहा है। प्रसव के बाद दूध उत्पादन अचानक बढ़ जाता है जिससे ऊर्जा की मांग बहुत अधिक हो जाती है। लेकिन इसी समय पशु का खाना कम हो जाता है। इस कारण शरीर अपनी जरूरत पूरी करने के लिए जमा चर्बी का उपयोग करता है। जब चर्बी टूटती है तो खून में फैटी एसिड की मात्रा बढ़ जाती है। यह शरीर के लिए ऊर्जा का स्रोत तो है लेकिन जब इसकी मात्रा ज्यादा हो जाती है तो यह शरीर के लिए नुकसानदायक भी हो सकता है। इससे कई बीमारियों की शुरुआत होती है।

वसा के टूटने से लीवर पर क्या असर पड़ता है जब शरीर में जमा वसा तेजी से टूटती है तो उसका सीधा असर लीवर पर पड़ता है। लीवर शरीर का एक महत्वपूर्ण अंग है जो ऊर्जा के संतुलन को बनाए रखने में मदद करता है। अधिक मात्रा में फैटी एसिड लीवर में पहुँचने पर उसका पूरा उपयोग नहीं हो पाता। इससे लीवर में वसा जमा होने लगती है जिसे फैटी लिवर कहा जाता है। इसके साथ ही कीटोन बॉडी का निर्माण भी बढ़ जाता है जिससे कीटोसिस की समस्या होती है। कीटोसिस होने पर पशु की भूख कम हो जाती है वह कमजोर दिखने लगता है और दूध उत्पादन घट जाता है। यदि समय पर इसका ध्यान न दिया जाए तो यह गंभीर समस्या बन सकती है।

प्रतिरक्षा शक्ति क्यों कम हो जाती है और इसका क्या प्रभाव पड़ता है

संक्रमण काल में पशु की रोग प्रतिरोधक क्षमता इम्यूनिटी कम हो जाती है। इसका मुख्य कारण हार्मोनल बदलाव ऊर्जा की कमी और शरीर में बढ़े हुए फैटी एसिड होते हैं। जब इम्यूनिटी कम होती है तो पशु जल्दी बीमार पड़ता है। इस समय थन की सूजन, गर्भाशय की सूजन और प्लेसेंटा रिटेंशन जैसी समस्याएं ज्यादा देखने को मिलती हैं।

संक्रमण काल में पोषण का सही प्रबंधन क्यों जरूरी है

इस समय सही आहार देना सबसे जरूरी होता है। संतुलित आहार देने से ऊर्जा की कमी को कम किया जा सकता है और शरीर को जरूरी पोषक तत्व मिलते हैं। पशु को ऐसा आहार देना चाहिए जिसमें पर्याप्त ऊर्जा प्रोटीन और फाइबर हो। इसके साथ ही कैल्शियम और अन्य खनिजों का संतुलन भी बनाए रखना जरूरी है। यदि पोषण सही होगा तो पशु स्वस्थ रहेगा और उत्पादन भी अच्छा होगा। संक्रमण काल का प्रभाव सीधे दूध उत्पादन पर पड़ता है। यदि इस समय पशु स्वस्थ रहता है तो वह अधिक दूध देता है और उसकी दुग्ध उत्पादन क्षमता बेहतर होती है।

लेकिन यदि इस समय पशु बीमार हो जाता है या उसे सही पोषण नहीं मिलता तो उसका दूध उत्पादन कम हो जाता है। कई बार वह अपने पूरे जीवन में कभी भी अपनी पूरी क्षमता से दूध नहीं दे पाता।

प्रजनन क्षमता पर संक्रमण काल का प्रभाव

संक्रमण काल केवल दूध उत्पादन ही नहीं, बल्कि प्रजनन पर भी असर डालता है। यदि इस समय पशु को समस्याएं होती हैं, तो उसका हीट साइकिल देर से शुरू होता है और गर्भधारण में भी समस्या होती है। इससे किसान को आर्थिक नुकसान होता है क्योंकि पशु जल्दी दुबारा गर्भधारण नहीं कर पाता।

संक्रमण काल में होने वाली आम बीमारियाँ

इस समय कई प्रकार की बीमारियाँ देखने को मिलती हैं जैसे कीटोसिस फैटी लिवर दूध ज्वर प्लेसेंटा रिटेंशन और मेट्राइटिस। ये सभी बीमारियाँ एक–दूसरे से जुड़ी होती हैं और एक समस्या दूसरी समस्या को बढ़ा देती है। भारत में खासकर ग्रामीण क्षेत्रों में संक्रमण काल का सही प्रबंधन नहीं हो पाता। इसका मुख्य कारण जानकारी की कमी संतुलित आहार की कमी और संसाधनों का अभाव है। बिहार जैसे राज्यों में छोटे किसान अधिक हैं जो पारंपरिक तरीके से पशुपालन करते हैं। यदि उन्हें वैज्ञानिक जानकारी और प्रशिक्षण दिया जाए तो इस स्थिति को सुधारा जा सकता है। यदि संक्रमण काल का सही प्रबंधन किया जाए तो पशु स्वस्थ रहता है दूध उत्पादन बढ़ता है और प्रजनन क्षमता बेहतर होती है। इससे किसान की आय में वृद्धि होती है और पशुपालन अधिक लाभकारी बनता है।

निष्कर्ष

संक्रमण काल दुधारु पशुओं के जीवन का सबसे महत्वपूर्ण चरण है। इस समय सही पोषण प्रबंधन और देखभाल द्वारा पशु को स्वस्थ रखा जा सकता है और उसकी उत्पादन क्षमता को अधिकतम किया जा सकता है। यदि इस अवधि को नजरअंदाज किया गया, तो इसका नकारात्मक प्रभाव पूरे उत्पादन चक्र पर पड़ता है।

दुग्धारु पशुओं में उत्पादन रोग कारण पहचान प्रभाव और आसान बचाव के तरीके

सोनिका वर्मा एवं मुस्कान कुमारी

पी० एच् डी स्कॉलर बिहार वेटेरिनरी कॉलेज बिहार पशु चिकित्सा विज्ञान विश्वविद्यालय

उत्पादन रोगों में कई महत्वपूर्ण बीमारियाँ शामिल होती हैं जो केवल अलग–अलग समस्याएँ नहीं हैं बल्कि एक–दूसरे से गहराई से जुड़ी होती हैं। इन रोगों का विकास मुख्यतः शरीर में ऊर्जा खनिज और हार्मोन के असंतुलन के कारण होता है विशेषकर संक्रमण काल के दौरान। इस समय पशु का शरीर अत्यधिक दबाव में होता है और यदि संतुलन बिगड़ जाता है तो विभिन्न प्रकार के उपापचयी विकार उत्पन्न होते हैं जो आगे चलकर एक श्रृंखला के रूप में अन्य रोगों को भी जन्म देते हैं।

दूध ज्वर का विकास और प्रभाव

दूध ज्वर मुख्य रूप से प्रसव के समय होने वाला एक महत्वपूर्ण उत्पादन रोग है जो शरीर में कैल्शियम की अचानक कमी के कारण उत्पन्न होता है। प्रसव के तुरंत बाद दूध बनने की प्रक्रिया शुरू होते ही शरीर से बड़ी मात्रा में कैल्शियम निकलने लगता है जिससे रक्त में इसका स्तर तेजी से गिर जाता है। उपलब्ध शोध के अनुसार तीसरे ब्यांत की लगभग आधी गायों में उप–नैदानिक हाइपोकैल्सीमिया पाया जाता है जो इस समस्या की व्यापकता को दर्शाता है ।

इस स्थिति में मांसपेशियों की कार्यक्षमता प्रभावित हो जाती है जिसके कारण पशु खड़ा नहीं हो पाता और धीरे–धीरे निष्क्रिय हो जाता है। यह रोग केवल एक स्वतंत्र समस्या नहीं है बल्कि इसे भी माना जाता है क्योंकि यह अन्य कई रोगों के लिए मार्ग प्रशस्त करता है। हाइपोकैल्सीमिया के कारण मांसपेशियों की कमजोरी होने से थन की नलिकाएँ ठीक से बंद नहीं हो पातीं जिससे मास्टाइटिस का खतरा बढ़ जाता है। इसके अलावा गर्भाशय की संकुचन क्षमता कम होने से प्लेसेंटा रिटेंशन और मेट्राइटिस जैसी समस्याएँ भी उत्पन्न होती हैं।

कीटोसिस और फैटी लिवर

कीटोसिस और फैटी लिवर ऊर्जा असंतुलन से उत्पन्न होने वाले प्रमुख उत्पादन रोग हैं। जब पशु के शरीर में ग्लूकोज की कमी हो जाती है तो वह अपनी ऊर्जा आवश्यकताओं को पूरा करने के लिए शरीर की चर्बी का उपयोग करना शुरू करता है। इस प्रक्रिया में वसा के टूटने से रक्त में

नॉन–एस्टरीफाइड फैटी एसिड की मात्रा बढ़ जाती है जो आगे चलकर कीटोन बॉडी में परिवर्तित हो जाती है। जब कीटोन बॉडी का स्तर अधिक हो जाता है तो कीटोसिस विकसित होता है जिसमें पशु की भूख कम हो जाती है दूध उत्पादन घट जाता है और वह सुस्त दिखाई देने लगता है। यदि यह स्थिति लंबे समय तक बनी रहती है तो अतिरिक्त वसा यकृत में जमा होने लगती है जिससे फैटी लिवर सिंड्रोम उत्पन्न होता है। फैटी लिवर के कारण यकृत की सामान्य कार्यक्षमता प्रभावित हो जाती है जिससे ग्लूकोज निर्माण कम हो जाता है और स्थिति और गंभीर हो जाती है। इस प्रकार कीटोसिस और फैटी लिवर एक–दूसरे को बढ़ावा देने वाले रोग हैं।

हाइपोमैग्नीसीमिया और इसका खतरा

हाइपोमैग्नीसीमिया एक महत्वपूर्ण खनिज असंतुलन से जुड़ा रोग है, जिसमें शरीर में मैग्नीशियम की कमी हो जाती है। मैग्नीशियम तंत्रिका और मांसपेशियों के सामान्य कार्य के लिए आवश्यक होता है इसलिए इसकी कमी से पशु में तंत्रिका संबंधी लक्षण दिखाई देते हैं। पशु में झटके बेचौनी असामान्य व्यवहार और गंभीर मामलों में मृत्यु तक हो सकती है। यह समस्या विशेष रूप से उन परिस्थितियों में अधिक देखी जाती है जब पशु हरे चारे पर निर्भर होता है विशेषकर वसंत ऋतु में उगने वाले घास में जिसमें मैग्नीशियम की मात्रा कम और पोटेशियम अधिक होता है। पोटेशियम की अधिकता मैग्नीशियम के अवशोषण को भी बाधित करती है जिससे समस्या और बढ़ जाती है।

हाइपोफॉस्फेटेमिया और डाउनर काउ सिंड्रोम का संबंध

हाइपोफॉस्फेटेमिया में शरीर में फॉस्फोरस की कमी हो जाती है जो मांसपेशियों और ऊर्जा चयापचय के लिए अत्यंत महत्वपूर्ण तत्व है। इस स्थिति में पशु सामान्य रूप से सतर्क रहता है और कई बार खाना भी खाता रहता है लेकिन वह खड़ा नहीं हो पाता। यही स्थिति आगे चलकर डाउनर काउ सिंड्रोम से जुड़ जाती है। उपलब्ध दस्तावेजों के अनुसार डाउनर काउ सिंड्रोम अक्सर कैल्शियम फॉस्फोरस और मैग्नीशियम की संयुक्त कमी के कारण उत्पन्न होता है । इस प्रकार यह केवल एक खनिज की कमी नहीं बल्कि बहु–खनिज असंतुलन का परिणाम होता है।

डाउनर काउ सिंड्रोम एक जटिल लेकिन महत्वपूर्ण समस्या

डाउनर काउ सिंड्रोम एक जटिल स्थिति है जिसमें पशु सतर्क रहता है लेकिन खड़ा नहीं हो पाता। यह अक्सर दूध ज्वर के बाद की स्थिति के रूप में देखा जाता है लेकिन इसके पीछे कई कारण हो सकते हैं। पशु सामान्य रूप से खाना खा सकता है जुगाली कर सकता है और सतर्क रहता है लेकिन वह उठने में असमर्थ होता है। यदि पशु लंबे समय तक लेटा रहता है विशेषकर

सात दिनों से अधिक तो उसके बचने की संभावना बहुत कम हो जाती है । इस स्थिति में मांसपेशियों पर दबाव नसों की क्षति मोटापा और खराब प्रबंधन जैसे कारक भी महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं। इसलिए इसका प्रबंधन केवल दवा तक सीमित नहीं है बल्कि उचित देखभाल और सहारा देना भी आवश्यक है।

उत्पादन रोग एक–दूसरे से कैसे जुड़े होते हैं

उत्पादन रोग अलग–अलग नहीं होते बल्कि एक श्रृंखला के रूप में विकसित होते हैं। एक रोग दूसरे रोग के लिए आधार तैयार करता है जिससे स्थिति और अधिक जटिल हो जाती है। उदाहरण के लिए दूध ज्वर के कारण मांसपेशियों की कमजोरी होती है जिससे प्लेसेंटा रिटेंशन और मेट्राइटिस का खतरा बढ़ जाता है। इसी प्रकार कीटोसिस और फैटी लिवर एक साथ विकसित होते हैं और एक–दूसरे को बढ़ावा देते हैं।

दस्तावेजों में भी यह स्पष्ट उल्लेख किया गया है कि एक मेटाबोलिक रोग अक्सर दूसरे रोग की शुरुआत करता है जिससे यह समस्या एक श्रृंखला के रूप में फैलती है । इसलिए इन रोगों को अलग–अलग नहीं बल्कि एक समेकित दृष्टिकोण से समझना आवश्यक है।

इन रोगों से होने वाला आर्थिक नुकसान कितना बड़ा है

उत्पादन रोगों का प्रभाव केवल पशु के स्वास्थ्य तक सीमित नहीं रहता बल्कि यह आर्थिक रूप से भी अत्यधिक नुकसानदायक होते हैं। इन रोगों के कारण दूध उत्पादन में कमी आती है जिससे सीधे आय में गिरावट होती है। इसके अलावा उपचार पर खर्च बढ़ जाता है और प्रजनन क्षमता में कमी आने से पशु के उत्पादक जीवनकाल पर भी असर पड़ता है। कई मामलों में पशु को समय से पहले ही हटाना पड़ता है, जिससे किसान को अतिरिक्त आर्थिक नुकसान उठाना पड़ता है। यह भी उल्लेखनीय है कि ये रोग उत्पन्न करते हैं जो तुरंत दिखाई नहीं देते लेकिन लंबे समय में गंभीर आर्थिक प्रभाव डालते हैं ।

जमीनी स्तर पर इन रोगों की पहचान कैसे करें

उत्पादन रोगों की पहचान के लिए पशु के व्यवहार और दैनिक गतिविधियों का सावधानीपूर्वक निरीक्षण करना आवश्यक है। यदि पशु की भूख कम हो जाए दूध उत्पादन घट जाए वह सुस्त दिखाई दे या खड़े होने में कठिनाई महसूस करे तो यह संकेत हो सकता है कि वह किसी उत्पादन रोग से प्रभावित है। इसके अलावा प्रयोगशाला परीक्षणों का भी महत्वपूर्ण स्थान है। रक्त और मूत्र की जांच द्वारा कीटोन बॉडी कैल्शियम और फॉस्फोरस के स्तर का पता लगाया जा सकता है जिससे रोग की पुष्टि की जा सकती है और समय पर उपचार किया जा सकता है।

नियंत्रण और बचाव के व्यावहारिक तरीके

उत्पादन रोगों से बचाव के लिए केवल उपचार पर्याप्त नहीं है बल्कि रोकथाम पर अधिक ध्यान देना आवश्यक है। संक्रमण काल में संतुलित आहार देना अत्यंत महत्वपूर्ण है जिससे ऊर्जा और खनिजों की आवश्यकता पूरी हो सके। कैल्शियम और अन्य खनिजों का संतुलन बनाए रखना चाहिए तथा आहार में अचानक बदलाव से बचना चाहिए। पशु को तनावमुक्त वातावरण देना भी आवश्यक है क्योंकि तनाव से उपापचयी असंतुलन और बढ़ सकता है। डाउनर काउ के मामलों में विशेष ध्यान देने की आवश्यकता होती है जिसमें पशु को नरम बिछावन देना समय–समय पर पलटना और आवश्यक होने पर स्लिंग का उपयोग करना शामिल है ।

भारतीय और बिहार की परिस्थितियों में उत्पादन रोगों की वास्तविक स्थिति

भारत में उत्पादन रोगों की समस्या मुख्य रूप से जागरूकता की कमी संतुलित आहार की अनुपलब्धता और वैज्ञानिक प्रबंधन के अभाव के कारण होती है। बिहार जैसे राज्यों में छोटे और सीमांत किसान अधिक हैं जो पारंपरिक तरीके से पशुपालन करते हैं। यहाँ संतुलित आहार का अभाव खनिज मिश्रण का सीमित उपयोग और पशुओं की नियमित निगरानी की कमी के कारण उत्पादन रोगों की घटनाएँ अधिक होती हैं। यदि किसानों को उचित प्रशिक्षण और संसाधन उपलब्ध कराए जाएँ तो इस स्थिति में सुधार किया जा सकता है।

समेकित प्रबंधन अपनाने से क्या बदलाव संभव है

यदि पोषण प्रबंधन और नियमित निगरानी को एक साथ लागू किया जाए तो उत्पादन रोगों को काफी हद तक नियंत्रित किया जा सकता है। इससे पशु का स्वास्थ्य बेहतर होता है दूध उत्पादन बढ़ता है और प्रजनन क्षमता में सुधार होता है। इसका सीधा लाभ किसान को मिलता है क्योंकि उसकी आय बढ़ती है और पशुपालन अधिक लाभकारी बनता है। समेकित दृष्टिकोण अपनाकर ही इन रोगों पर प्रभावी नियंत्रण संभव है।

निष्कर्ष

उत्पादन रोग डेयरी क्षेत्र की एक गंभीर चुनौती हैं लेकिन उचित प्रबंधन और वैज्ञानिक दृष्टिकोण के माध्यम से इन्हें नियंत्रित किया जा सकता है। संक्रमण काल से ही यदि सही पोषण और देखभाल सुनिश्चित की जाए तो इन रोगों की संभावना को काफी कम किया जा सकता है। इसलिए यह आवश्यक है कि पशुपालक इन रोगों के कारण लक्षण और नियंत्रण उपायों को अच्छी तरह समझें और समय पर उचित कदम उठाएँ ताकि पशु स्वस्थ रहे और उत्पादन अधिकतम हो सके।

दुधारू पशुओं में रिपीट ब्रीडिंग (Repeat Breeding): कारण, निदान एवं प्रबंधन

आलोक कुमार

बिहार वेटेरिनरी कॉलेज, बिहार पशु चिकित्सा विज्ञान विश्वविद्यालय

प्रस्तावना

पशुपालन भारत की कृषि आधारित अर्थव्यवस्था का एक महत्वपूर्ण अंग है तथा दुधारू पशुओं की प्रजनन क्षमता डेयरी उद्योग की सफलता निर्धारित करने वाले प्रमुख कारकों में से एक मानी जाती है। किसी भी दुधारू पशु की उत्पादकता केवल उसके दुग्ध उत्पादन तक सीमित नहीं होती बल्कि उसकी नियमित प्रजनन क्षमता भी उतनी ही महत्वपूर्ण होती है। यदि कोई पशु नियमित अंतराल पर गर्भधारण करता है तथा स्वस्थ संतानों को जन्म देता है, तो उसकी आर्थिक उपयोगिता अधिक होती है। इसके विपरीत प्रजनन विकार पशुपालकों के लिए गंभीर आर्थिक हानि का कारण बन सकते हैं। इन प्रजनन विकारों में रिपीट ब्रीडिंग सिंड्रोम (Repeat Breeding Syndrome) दुधारू पशुओं विशेषकर गाय एवं भैंसों में अत्यंत सामान्य एवं आर्थिक दृष्टि से महत्वपूर्ण समस्या मानी जाती है।

रिपीट ब्रीडिंग एक जटिल बहुक्रियात्मक प्रजनन विकार है जिसमें पशु सामान्य एस्ट्रस चक्र प्रदर्शित करता है तथा दो या अधिक बार कृत्रिम गर्भाधान अथवा प्राकृतिक गर्भाधान के बावजूद गर्भधारण करने में असफल रहता है जबकि उसके जननांगों में कोई स्पष्ट रोगात्मक परिवर्तन दिखाई नहीं देता। कुछ वैज्ञानिक इसे तीन या अधिक असफल गर्भाधान के बाद गर्भधारण न होने की स्थिति के रूप में परिभाषित करते हैं। यह समस्या विश्वभर में डेयरी पशुओं में देखी जाती है तथा उच्च उत्पादक पशुओं में इसकी घटनाएँ अपेक्षाकृत अधिक पाई जाती हैं। रिपीट ब्रीडिंग केवल एक रोग नहीं बल्कि अनेक कारकों से प्रभावित होने वाली स्थिति है जिसमें पोषण हार्मोनल असंतुलन गर्भाशय संक्रमण आनुवंशिक कारक पर्यावरणीय तनाव प्रबंधन त्रुटियाँ तथा कृत्रिम गर्भाधान संबंधी समस्याएँ सम्मिलित हो सकती हैं। यही कारण है कि इस समस्या का निदान एवं उपचार कई बार चुनौतीपूर्ण हो जाता है।

वर्तमान समय में दुग्ध उत्पादन बढ़ाने के लिए उच्च आनुवंशिक क्षमता वाले पशुओं का उपयोग बढ़ा है, किंतु इन पशुओं में चयापचयीय तनाव तथा प्रजनन विकारों की संभावना भी बढ़ी

है। परिणामस्वरूप रिपीट ब्रीडिंग की समस्या डेयरी उद्योग के लिए एक महत्वपूर्ण चुनौती बनकर उभरी है। यह समस्या न केवल गर्भधारण दर को प्रभावित करती है बल्कि प्रसवांतराल बढ़ाती है दुग्ध उत्पादन कम करती है तथा पशुपालकों पर अतिरिक्त आर्थिक भार डालती है।

रिपीट ब्रीडिंग की समस्या का प्रभाव केवल एक पशु तक सीमित नहीं रहता बल्कि संपूर्ण झुंड की प्रजनन दक्षता को प्रभावित कर सकता है। बढ़ा हुआ सेवा काल (service period), अधिक गर्भाधान लागत, अतिरिक्त उपचार व्यय तथा समयपूर्व पशु निष्कासन (culling) इसके प्रत्यक्ष आर्थिक परिणाम हैं। इसलिए रिपीट ब्रीडिंग को आधुनिक डेयरी प्रबंधन में महत्वपूर्ण प्रजनन विकार माना जाता है।

रिपीट ब्रीडिंग की अवधारणा

रिपीट ब्रीडिंग ऐसी अवस्था है जिसमें पशु सामान्य हीट प्रदर्शित करता है जननांगों में स्पष्ट रोगात्मक असामान्यता नहीं होती किंतु बार–बार गर्भाधान के बावजूद गर्भधारण नहीं हो पाता। यह स्थिति कई स्तरों पर उत्पन्न हो सकती है जैसे निषेचन में विफलता भ्रूण मृत्यु गर्भाशय का प्रतिकूल वातावरण अथवा हार्मोनल असंतुलन। सामान्य प्रजनन प्रक्रिया में सफल गर्भधारण के लिए अंडोत्सर्जन निषेचन भ्रूण विकास एवं गर्भाशय में भ्रूण स्थापन जैसी घटनाओं का समुचित रूप से होना आवश्यक है। इनमें से किसी भी चरण में बाधा उत्पन्न होने पर रिपीट ब्रीडिंग विकसित हो सकती है।

रिपीट ब्रीडिंग की जटिलता इस तथ्य से स्पष्ट होती है कि कई बार प्रभावित पशुओं में बाह्य रूप से कोई रोग लक्षण नहीं दिखाई देते। पशु सामान्य चक्र प्रदर्शित करता है, आहार ग्रहण करता है तथा स्वास्थ्य सामान्य प्रतीत होता है किंतु गर्भधारण नहीं हो पाता। ऐसी स्थिति में कारणों की पहचान करना चुनौतीपूर्ण हो जाता है।

रिपीट ब्रीडिंग का आर्थिक महत्व

रिपीट ब्रीडिंग डेयरी उद्योग में गंभीर आर्थिक समस्या है। प्रत्येक असफल गर्भाधान के साथ पशुपालक को अतिरिक्त गर्भाधान लागत उपचार व्यय तथा उत्पादन हानि का सामना करना पड़ता है। प्रसवांतराल बढ़ने के कारण जीवनकालीन दुग्ध उत्पादन घट सकता है। इसी प्रकार लंबे समय तक गर्भधारण न होने पर पशुओं को झुंड से निकालने की आवश्यकता पड़ सकती है जिससे आनुवंशिक एवं आर्थिक हानि होती है। भारत जैसे देशों में जहाँ अधिकांश पशुपालन छोटे किसानों द्वारा किया जाता है रिपीट ब्रीडिंग का प्रभाव और अधिक गंभीर हो सकता है क्योंकि सीमित

संसाधनों के कारण बार–बार उपचार संभव नहीं होता।

रिपीट ब्रीडिंग की परिभाषा

रिपीट ब्रीडिंग ऐसी अवस्था है जिसमें सामान्य प्रजनन चक्र प्रदर्शित करने वाली मादा पशु दो या अधिक बार कृत्रिम गर्भाधान अथवा प्राकृतिक गर्भाधान के बावजूद गर्भधारण करने में असफल रहती है, जबकि उसके जननांगों में कोई स्पष्ट रोगात्मक परिवर्तन दिखाई नहीं देता। कई विशेषज्ञ इसे तीन या उससे अधिक बार असफल गर्भाधान के बाद भी गर्भधारण न होने की स्थिति के रूप में परिभाषित करते हैं। इस परिभाषा में दो महत्वपूर्ण बातें निहित हैं। पहली प्रभावित पशु सामान्य हीट (estrus) प्रदर्शित करता है अर्थात उसका प्रजनन चक्र सक्रिय होता है। दूसरी जननांगों में कोई स्पष्ट रोग या संरचनात्मक असामान्यता दिखाई नहीं देती। यही कारण है कि रिपीट ब्रीडिंग कई बार पशु चिकित्सकों के लिए निदान संबंधी चुनौती बन जाती है। व्यावहारिक दृष्टिकोण से देखा जाए तो रिपीट ब्रीडिंग केवल गर्भधारण में असफलता नहीं है बल्कि यह सामान्य प्रजनन प्रक्रिया के किसी चरण में उत्पन्न व्यवधान का परिणाम है। यह व्यवधान अंडोत्सर्जन निषेचन भ्रूण विकास अथवा गर्भाशय में भ्रूण स्थापन के स्तर पर उत्पन्न हो सकता है।

रिपीट ब्रीडिंग का वर्गीकरण

रिपीट ब्रीडिंग को विभिन्न आधारों पर वर्गीकृत किया जा सकता है। कारणों के आधार पर इसे कार्यात्मक (functional) एवं रोगात्मक (pathological) श्रेणियों में विभाजित किया जाता है। कार्यात्मक रिपीट ब्रीडिंग में हार्मोनल असंतुलन समय से पहले या देर से अंडोत्सर्जन तथा पोषणीय कारक शामिल हो सकते हैं जबकि रोगात्मक रिपीट ब्रीडिंग में गर्भाशय संक्रमण एंडोमेट्राइटिस अथवा अन्य जननांग रोग प्रमुख भूमिका निभाते हैं। इसी प्रकार इसे निषेचन से पूर्व तथा निषेचन के बाद उत्पन्न होने वाली समस्याओं के आधार पर भी वर्गीकृत किया जा सकता है। निषेचन पूर्व समस्याओं में खराब हीट पहचान अंडोत्सर्जन विकार एवं वीर्य संबंधी समस्याएँ सम्मिलित होती हैं जबकि निषेचन के बाद भ्रूण मृत्यु एवं भ्रूण स्थापन में विफलता महत्वपूर्ण कारण हो सकते हैं।

रिपीट ब्रीडिंग का महामारी विज्ञान (Epidemiology)

महामारी विज्ञान किसी रोग या स्थिति के वितरण तथा उससे संबंधित जोखिम कारकों का अध्ययन करता है। रिपीट ब्रीडिंग की घटनाएँ विभिन्न देशों नस्लों एवं प्रबंधन प्रणालियों में अलग–अलग पाई जाती हैं। उच्च उत्पादक डेयरी गायों में रिपीट ब्रीडिंग की घटनाएँ अपेक्षाकृत

अधिक देखी गई हैं। इसका प्रमुख कारण यह माना जाता है कि उच्च दुग्ध उत्पादन करने वाले पशुओं में चयापचयीय तनाव अधिक होता है, जिससे प्रजनन क्षमता प्रभावित हो सकती है। उष्णकटिबंधीय क्षेत्रों में तापीय तनाव भी रिपीट ब्रीडिंग की घटनाओं को बढ़ा सकता है। भारतीय परिस्थितियों में रिपीट ब्रीडिंग विशेष रूप से एक महत्वपूर्ण समस्या है क्योंकि यहाँ छोटे पशुपालकों द्वारा पारंपरिक प्रबंधन पद्धतियों का उपयोग अधिक किया जाता है। संतुलित पोषण की कमी खनिज असंतुलन तथा कृत्रिम गर्भाधान में तकनीकी त्रुटियाँ इस समस्या को बढ़ा सकती हैं।

रिपीट ब्रीडिंग से संबंधित जोखिम कारक

रिपीट ब्रीडिंग की घटनाओं को प्रभावित करने वाले अनेक जोखिम कारक होते हैं। पशु की आयु दुग्ध उत्पादन स्तर पोषण स्थिति शरीर स्थिति स्कोर (Body Condition Score), पर्यावरणीय तापमान एवं प्रबंधन प्रणाली इनमें महत्वपूर्ण हैं। उच्च दुग्ध उत्पादन करने वाले पशुओं में ऊर्जा आवश्यकता अधिक होती है। यदि यह आवश्यकता पूरी नहीं होती तो नकारात्मक ऊर्जा संतुलन उत्पन्न हो सकता है जो प्रजनन क्षमता को प्रभावित करता है। इसी प्रकार अत्यधिक गर्मी तनाव भी हार्मोनल संतुलन एवं अंडोत्सर्जन को प्रभावित कर सकता है।

रिपीट ब्रीडिंग की रोगजनन (Pathogenesis)

रोगजनन उस प्रक्रिया को संदर्भित करता है जिसके माध्यम से कोई रोग या विकार विकसित होता है। रिपीट ब्रीडिंग की रोगजनन जटिल होती है क्योंकि इसमें कई जैविक प्रक्रियाएँ सम्मिलित हो सकती हैं।

सामान्य परिस्थितियों में सफल गर्भधारण के लिए उचित समय पर अंडोत्सर्जन स्वस्थ अंडाणु की उपलब्धता पर्याप्त गुणवत्ता वाले शुक्राणु सफल निषेचन तथा भ्रूण का गर्भाशय में सफल स्थापन आवश्यक होता है। इनमें से किसी भी चरण में असफलता रिपीट ब्रीडिंग का कारण बन सकती है। यदि अंडोत्सर्जन समय पर नहीं होता अथवा अंडाणु की गुणवत्ता प्रभावित होती है तो निषेचन संभव नहीं हो पाता। इसी प्रकार गर्भाशय का प्रतिकूल वातावरण भ्रूण विकास को बाधित कर सकता है। प्रारंभिक भ्रूण मृत्यु भी रिपीट ब्रीडिंग का महत्वपूर्ण कारण मानी जाती है।

हार्मोनल असंतुलन एवं रिपीट ब्रीडिंग

प्रजनन प्रक्रिया विभिन्न हार्मोनों द्वारा नियंत्रित होती है। गोनाडोट्रोपिन रिलीजिंग हार्मोन (GnRH), फॉलिकल स्टिमुलेटिंग हार्मोन (FSH), ल्यूटिनाइजिंग हार्मोन (LH), एस्ट्रोजन एवं प्रोजेस्टेरोन इन प्रक्रियाओं में महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं। यदि इन हार्मोनों के स्तर में असंतुलन

उत्पन्न हो जाए तो अंडोत्सर्जन प्रभावित हो सकता है। अपर्याप्त प्रोजेस्टेरोन स्तर प्रारंभिक भ्रूण विकास को बाधित कर सकता है तथा भ्रूण मृत्यु का कारण बन सकता है।

भ्रूण मृत्यु एवं रिपीट ब्रीडिंग

प्रारंभिक भ्रूण मृत्यु रिपीट ब्रीडिंग का अत्यंत महत्वपूर्ण कारण मानी जाती है। कई बार निषेचन सफलतापूर्वक हो जाता है किंतु भ्रूण विकास प्रारंभिक चरण में ही रुक जाता है। यह स्थिति पोषणीय कमी हार्मोनल असंतुलन अथवा गर्भाशय वातावरण की प्रतिकूलता के कारण उत्पन्न हो सकती है।

प्रतिरक्षा प्रणाली एवं रिपीट ब्रीडिंग

हाल के वर्षों में यह स्पष्ट हुआ है कि प्रतिरक्षा प्रणाली रिपीट ब्रीडिंग में महत्वपूर्ण भूमिका निभा सकती है। गर्भाशय की प्रतिरक्षात्मक प्रतिक्रिया भ्रूण स्थापन को प्रभावित कर सकती है। अत्यधिक सूजन अथवा संक्रमण भ्रूण के लिए प्रतिकूल वातावरण उत्पन्न कर सकता है।

रिपीट ब्रीडिंग की बहुक्रियात्मक प्रकृति

रिपीट ब्रीडिंग सामान्यतः किसी एक कारण से उत्पन्न नहीं होती, बल्कि अनेक कारकों के संयुक्त प्रभाव का परिणाम होती है। यही कारण है कि निदान एवं उपचार के दौरान समग्र दृष्टिकोण अपनाना आवश्यक होता है। केवल एक कारक पर ध्यान केंद्रित करने से वास्तविक कारण छूट सकता है।

पोषणीय कारण

दुधारू पशुओं में प्रजनन दक्षता बनाए रखने के लिए संतुलित पोषण अत्यंत आवश्यक है। पोषण की कमी अथवा असंतुलन केवल दुग्ध उत्पादन को ही प्रभावित नहीं करता, बल्कि यह सीधे प्रजनन क्षमता को भी प्रभावित करता है। अपर्याप्त पोषण के कारण हार्मोन संश्लेषण, अंडाशयी गतिविधि अंडोत्सर्जन तथा भ्रूण विकास प्रभावित हो सकते हैं। उच्च उत्पादक दुधारू पशुओं में प्रसवोत्तर अवधि के दौरान नकारात्मक ऊर्जा संतुलन (Negative Energy Balance) एक सामान्य स्थिति होती है। इस अवस्था में पशु की ऊर्जा आवश्यकता उसकी ऊर्जा प्राप्ति से अधिक होती है जिसके कारण शरीर वसा भंडार का उपयोग प्रारंभ करता है। परिणामस्वरूप चयापचयीय परिवर्तन उत्पन्न होते हैं जो अंडाशयी कार्य एवं हार्मोनल संतुलन को प्रभावित कर सकते हैं। ऊर्जा की कमी के अतिरिक्त प्रोटीन असंतुलन भी प्रजनन समस्याओं का कारण बन सकता है। अत्यधिक प्रोटीन अथवा अपर्याप्त प्रोटीन दोनों ही स्थितियाँ गर्भाशय वातावरण को प्रभावित कर सकती हैं। इसी प्रकार कैल्शियम फास्फोरस मैग्नीशियम तथा सूक्ष्म खनिजों की कमी प्रजनन स्वास्थ्य को

प्रभावित कर सकती है। खनिजों में विशेष रूप से फास्फोरस की कमी लंबे समय से रिपीट ब्रीडिंग से संबंधित मानी जाती रही है। फास्फोरस ऊर्जा चयापचय एवं कोशिकीय प्रक्रियाओं में महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है। इसकी कमी अंडोत्सर्जन एवं गर्भधारण को प्रभावित कर सकती है। सूक्ष्म खनिज जैसे जिंक कॉपर सेलेनियम एवं मैंगनीज भी प्रजनन प्रक्रिया में महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं। इनकी कमी से हार्मोन संश्लेषण प्रभावित हो सकता है तथा भ्रूण मृत्यु की संभावना बढ़ सकती है।

हार्मोनल कारण (Hormonal Causes)

हार्मोन प्रजनन प्रक्रिया के प्रमुख नियंत्रक होते हैं। इनके संतुलन में किसी भी प्रकार की गड़बड़ी रिपीट ब्रीडिंग का कारण बन सकती है। अंडोत्सर्जन फॉलिकल विकास तथा गर्भावस्था बनाए रखने के लिए हार्मोनल समन्वय आवश्यक होता है। ल्यूटिनाइजिंग हार्मोन (LH) की अपर्याप्त वृद्धि समय पर अंडोत्सर्जन को प्रभावित कर सकती है। यदि अंडोत्सर्जन देर से होता है अथवा नहीं होता तो निषेचन संभव नहीं हो पाता। इसी प्रकार अपर्याप्त प्रोजेस्टेरोन स्तर प्रारंभिक भ्रूण विकास को प्रभावित कर सकता है। प्रोजेस्टेरोन गर्भावस्था बनाए रखने वाला प्रमुख हार्मोन है। इसकी कमी भ्रूण स्थापन में विफलता तथा प्रारंभिक भ्रूण मृत्यु का कारण बन सकती है। कुछ पशुओं में ल्यूटियल अपर्याप्तता (Luteal insufficiency) रिपीट ब्रीडिंग से संबंधित पाई गई है। थायरॉयड हार्मोन असंतुलन भी प्रजनन क्षमता को प्रभावित कर सकता है क्योंकि ये शरीर के चयापचय को नियंत्रित करते हैं। इसी प्रकार तनाव हार्मोन कोर्टिसोल की अधिकता प्रजनन हार्मोनों के संतुलन को प्रभावित कर सकती है।

अंडाशयी विकार (Ovarian Disorders)

अंडाशयी कार्य में गड़बड़ी रिपीट ब्रीडिंग का प्रमुख कारण हो सकती है। विलंबित अंडोत्सर्जन मौन अंडोत्सर्जन तथा सिस्टिक ओवरी जैसी स्थितियाँ गर्भधारण को प्रभावित कर सकती हैं। कुछ पशुओं में हीट प्रदर्शित होने के बावजूद अंडोत्सर्जन समय पर नहीं होता। परिणामस्वरूप गर्भाधान का समय एवं अंडोत्सर्जन में असंगति उत्पन्न हो जाती है जिससे निषेचन की संभावना कम हो जाती है। ओवेरियन सिस्ट भी हार्मोनल असंतुलन उत्पन्न कर सकते हैं तथा सामान्य प्रजनन चक्र को बाधित कर सकते हैं।

गर्भाशय संबंधी कारण (Uterine Causes)

गर्भाशय सफल भ्रूण विकास के लिए उपयुक्त वातावरण प्रदान करता है। यदि गर्भाशय में सूजन अथवा संक्रमण उपस्थित हो तो भ्रूण विकास प्रभावित हो सकता है। सबक्लीनिकल

एंडोमेट्राइटिस (Subclinical Endometritis) रिपीट ब्रीडिंग का महत्वपूर्ण कारण माना जाता है। इस स्थिति में स्पष्ट रोग लक्षण नहीं दिखाई देते, किंतु गर्भाशय की सूजन भ्रूण स्थापन को प्रभावित कर सकती है। क्रॉनिक एंडोमेट्राइटिस मेट्राइटिस तथा गर्भाशय में अवशिष्ट संक्रमण भी रिपीट ब्रीडिंग से संबंधित हो सकते हैं।

संक्रमणीय कारण (Infectious Causes)

जननांग संक्रमण प्रजनन क्षमता को गंभीर रूप से प्रभावित कर सकते हैं। बैक्टीरिया वायरस एवं अन्य रोगजनक गर्भाशय वातावरण को प्रभावित कर सकते हैं। ब्रुसेलोसिस लेप्टोस्पायरोसिस कैम्पिलोबैक्टीरियोसिस तथा ट्राइकोमोनियासिस जैसे संक्रमण प्रजनन विफलता का कारण बन सकते हैं। संक्रमण से भ्रूण मृत्यु अथवा गर्भधारण में असफलता हो सकती है। उपनैदानिक संक्रमण विशेष रूप से महत्वपूर्ण होते हैं क्योंकि इनमें स्पष्ट लक्षण नहीं दिखाई देते किंतु प्रजनन क्षमता प्रभावित होती रहती है।

वीर्य एवं कृत्रिम गर्भाधान संबंधी कारण

रिपीट ब्रीडिंग केवल मादा पशु से संबंधित समस्या नहीं होती। वीर्य गुणवत्ता एवं गर्भाधान तकनीक भी महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं। कम गुणवत्ता वाले शुक्राणु अनुचित वीर्य संरक्षण अथवा गलत गर्भाधान तकनीक गर्भधारण दर को प्रभावित कर सकती है। यदि गर्भाधान गलत समय पर किया जाए तो सफल निषेचन की संभावना कम हो जाती है। हीट पहचान में त्रुटियाँ भी रिपीट ब्रीडिंग का महत्वपूर्ण कारण हैं। यदि पशु का गर्भाधान अनुचित समय पर किया जाए, तो गर्भधारण प्रभावित हो सकता है।

आनुवंशिक कारण (Genetic Causè)

कुछ पशुओं में आनुवंशिक कारक प्रजनन क्षमता को प्रभावित कर सकते हैं। उच्च दुग्ध उत्पादन हेतु चयनित पशुओं में कई बार प्रजनन क्षमता कम पाई गई है। आनुवंशिक दोष भ्रूण विकास अथवा हार्मोनल नियंत्रण को प्रभावित कर सकते हैं। यद्यपि इनका योगदान अपेक्षाकृत कम होता है, फिर भी इन्हें पूर्णतः अनदेखा नहीं किया जा सकता।

तापीय तनाव एवं पर्यावरणीय कारण

उच्च तापमान एवं आर्द्रता दुधारू पशुओं में प्रजनन क्षमता को प्रभावित कर सकते हैं। गर्मी तनाव के कारण आहार ग्रहण क्षमता कम होती है तथा हार्मोनल परिवर्तन उत्पन्न हो सकते हैं। उष्णकटिबंधीय देशों में तापीय तनाव रिपीट ब्रीडिंग का महत्वपूर्ण कारण माना जाता है। गर्मी तनाव अंडोत्सर्जन एवं भ्रूण विकास को प्रभावित कर सकता है।

प्रबंधन संबंधी कारण

अपर्याप्त पोषण, खराब आवास, अनुचित स्वास्थ्य देखभाल तथा तनावपूर्ण वातावरण रिपीट ब्रीडिंग की घटनाओं को बढ़ा सकते हैं।

कृत्रिम गर्भाधान में तकनीकी त्रुटियाँ, अनुचित रिकॉर्ड प्रबंधन तथा कमजोर हीट पहचान प्रणाली भी महत्वपूर्ण योगदान दे सकती हैं।

निष्कर्ष

अधिकांश मामलों में रिपीट ब्रीडिंग किसी एक कारण से उत्पन्न नहीं होती बल्कि अनेक कारकों की संयुक्त क्रिया का परिणाम होती है। उदाहरण के लिए पोषणीय कमी हार्मोनल असंतुलन उत्पन्न कर सकती है, जो अंडोत्सर्जन को प्रभावित कर सकती है। इसी प्रकार संक्रमण गर्भाशय वातावरण को प्रभावित कर भ्रूण मृत्यु का कारण बन सकता है। इसलिए रिपीट ब्रीडिंग के प्रभावी प्रबंधन हेतु समग्र दृष्टिकोण अपनाना आवश्यक है।रिपीट ब्रीडिंग के प्रभावी नियंत्रण की आधारशिला सटीक एवं व्यापक निदान है। चूँकि यह बहुक्रियात्मक समस्या है, इसलिए इसके निदान हेतु रोग इतिहास, नैदानिक परीक्षण, रेक्टल परीक्षण, अल्ट्रासोनोग्राफी, हार्मोन विश्लेषण, गर्भाशय कोशिका विज्ञान तथा आणविक तकनीकों सहित बहुआयामी दृष्टिकोण अपनाना आवश्यक है। प्रारंभिक एवं सटीक निदान न केवल उपचार की सफलता बढ़ाता है बल्कि प्रजनन दक्षता सुधारने एवं आर्थिक हानि कम करने में भी सहायक होता है।

कृत्रिम गर्भाधान केन्द्र की स्थापना

आलोक कुमार

बिहार वेटेरिनरी कॉलेज, बिहार पशु चिकित्सा विज्ञान विश्वविद्यालय,पटना

परिचय

कृत्रिम गर्भाधान केन्द्र की स्थापना आधुनिक पशुपालन व्यवस्था का एक अत्यंत महत्वपूर्ण घटक है, जिसका उद्देश्य पशुधन की आनुवंशिक गुणवत्ता में सुधार करना प्रजनन क्षमता को बढ़ाना उत्पादकता में वृद्धि करना तथा किसानों की आर्थिक स्थिति को मजबूत बनाना है। वर्तमान समय में पशुपालन केवल जीविकोपार्जन का साधन नहीं रह गया है बल्कि यह ग्रामीण अर्थव्यवस्था, पोषण सुरक्षा तथा राष्ट्रीय आय का एक महत्वपूर्ण स्तंभ बन चुका है। भारत जैसे कृषि प्रधान देश में जहां बड़ी जनसंख्या प्रत्यक्ष अथवा अप्रत्यक्ष रूप से पशुपालन पर निर्भर करती है वहां वैज्ञानिक प्रजनन तकनीकों का उपयोग पशुधन विकास के लिए अत्यंत आवश्यक हो गया है। कृत्रिम गर्भाधान तकनीक इसी दिशा में एक क्रांतिकारी कदम है जिसने सीमित संसाधनों के साथ अधिक उत्पादक तथा श्रेष्ठ आनुवंशिक गुणों वाले पशुधन के विकास को संभव बनाया है। कृत्रिम गर्भाधान का अर्थ है कि उच्च गुणवत्ता वाले नर पशु से प्राप्त वीर्य को वैज्ञानिक प्रक्रियाओं द्वारा संग्रहित परीक्षणित तथा संरक्षित करने के पश्चात प्राकृतिक मैथुन के बिना मादा पशु के जनन मार्ग में स्थापित किया जाए जिससे गर्भधारण हो सके। इस तकनीक के माध्यम से एक श्रेष्ठ नर पशु के आनुवंशिक गुणों को हजारों मादा पशुओं तक पहुंचाया जा सकता है। परिणामस्वरूप कम समय में पशुधन की गुणवत्ता में उल्लेखनीय सुधार संभव होता है। कृत्रिम गर्भाधान केन्द्र इसी तकनीक को व्यवस्थित रूप से संचालित करने वाले संस्थान हैं जहां वीर्य भंडारण गर्भाधान सेवाएं गर्भ जांच प्रजनन रोग निदान तथा किसानों को तकनीकी परामर्श उपलब्ध कराया जाता है।

कृत्रिम गर्भाधान का इतिहास एवं विकास

कृत्रिम गर्भाधान की अवधारणा कई शताब्दियों पुरानी है हालांकि इसका वैज्ञानिक विकास धीरे–धीरे हुआ। प्रारंभिक समय में पशु प्रजनन पूर्णतः प्राकृतिक मैथुन पर आधारित था। समय के साथ वैज्ञानिकों ने यह समझने का प्रयास किया कि नर एवं मादा के प्रत्यक्ष संपर्क के बिना भी गर्भधारण संभव हो सकता है। विभिन्न शोधों के माध्यम से यह सिद्ध हुआ कि शुक्राणुओं को कृत्रिम

रूप से मादा जनन मार्ग में स्थापित कर सफल गर्भधारण कराया जा सकता है। 20वीं शताब्दी में वीर्य संरक्षण तकनीकों विशेष रूप से क्रायोप्रिजर्वेशन तथा तरल नाइट्रोजन के उपयोग ने कृत्रिम गर्भाधान कार्यक्रमों में महत्वपूर्ण परिवर्तन लाया। अत्यंत निम्न तापमान पर वीर्य को लंबे समय तक सुरक्षित रखने की क्षमता विकसित होने के पश्चात श्रेष्ठ आनुवंशिक गुणों वाले नर पशुओं के वीर्य का बड़े पैमाने पर उपयोग संभव हुआ। भारत में भी पशुधन विकास कार्यक्रमों तथा दुग्ध उत्पादन वृद्धि अभियानों के दौरान कृत्रिम गर्भाधान तकनीक को व्यापक स्तर पर अपनाया गया। आज यह तकनीक पशुधन सुधार कार्यक्रमों का अभिन्न अंग बन चुकी है।

कृत्रिम गर्भाधान केन्द्र की आवश्यकता

कृत्रिम गर्भाधान केन्द्रों की स्थापना की आवश्यकता इसलिए उत्पन्न हुई क्योंकि पारंपरिक प्रजनन प्रणाली में अनेक सीमाएं थीं। प्राकृतिक प्रजनन में श्रेष्ठ नर पशुओं की उपलब्धता सीमित होती है तथा एक नर पशु सीमित संख्या में ही मादा पशुओं के साथ प्रजनन कर सकता है। इसके अतिरिक्त प्राकृतिक मैथुन के माध्यम से विभिन्न संक्रामक प्रजनन रोगों के फैलने की संभावना भी बनी रहती है। ऐसी परिस्थितियों में कृत्रिम गर्भाधान तकनीक इन समस्याओं का प्रभावी समाधान प्रस्तुत करती है। कृत्रिम गर्भाधान केन्द्र पशुधन की आनुवंशिक गुणवत्ता में सुधार करने दुग्ध एवं मांस उत्पादन बढ़ाने प्रजनन दक्षता सुधारने तथा किसानों को गुणवत्तापूर्ण सेवाएं प्रदान करने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं। इन केन्द्रों के माध्यम से दुर्लभ अथवा उच्च उत्पादकता वाली नस्लों के गुणों को दूरस्थ क्षेत्रों तक पहुंचाया जा सकता है। यह विशेष रूप से ग्रामीण क्षेत्रों के लिए लाभकारी है जहां उच्च गुणवत्ता वाले प्रजनन नर पशुओं की उपलब्धता सीमित होती है।

कृत्रिम गर्भाधान केन्द्र स्थापना हेतु योजना निर्माण

किसी भी कृत्रिम गर्भाधान केन्द्र की स्थापना से पूर्व विस्तृत योजना बनाना अत्यंत आवश्यक है। योजना निर्माण के दौरान संबंधित क्षेत्र में पशुधन संख्या पशुपालकों की आवश्यकताएं उपलब्ध संसाधन तकनीकी सुविधाएं तथा संभावित मांग का आकलन किया जाना चाहिए। यदि किसी क्षेत्र में पर्याप्त पशुधन उपलब्ध नहीं है अथवा प्रजनन सेवाओं की मांग कम है तो वहां केन्द्र की स्थापना आर्थिक दृष्टि से व्यवहार्य नहीं हो सकती। योजना निर्माण में वित्तीय संसाधनों का मूल्यांकन भी महत्वपूर्ण होता है। केन्द्र की स्थापना हेतु भवन निर्माण उपकरण खरीद तरल नाइट्रोजन भंडारण व्यवस्था मानव संसाधन नियुक्ति तथा संचालन व्यय का अनुमान लगाया जाना चाहिए। दीर्घकालिक स्थिरता सुनिश्चित करने हेतु व्यवसाय मॉडल विकसित करना भी आवश्यक है।

स्थान चयन

कृत्रिम गर्भाधान केन्द्र की सफलता काफी हद तक उसके स्थान चयन पर निर्भर करती है। केन्द्र ऐसे स्थान पर स्थापित होना चाहिए जहां पशुपालकों की पहुंच सरल हो तथा सेवाएं समय पर उपलब्ध कराई जा सकें। स्थान का चयन करते समय सड़क संपर्क विद्युत आपूर्ति स्वच्छ जल की उपलब्धता संचार सुविधा तथा जैव सुरक्षा जैसे पहलुओं पर विशेष ध्यान दिया जाना चाहिए। ग्रामीण क्षेत्रों में स्थापित केन्द्रों के लिए यह आवश्यक है कि वे पशुपालकों के निकट हों ताकि ऊष्मा की पहचान के पश्चात समय पर गर्भाधान किया जा सके। कृत्रिम गर्भाधान की सफलता में समय अत्यंत महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है इसलिए दूरी कम होना लाभकारी होता है।

आधारभूत संरचना

एक आधुनिक कृत्रिम गर्भाधान केन्द्र में सुव्यवस्थित आधारभूत संरचना होना आवश्यक है। इसमें प्रशासनिक कार्यालय वीर्य भंडारण कक्ष प्रयोगशाला उपकरण कक्ष तथा रिकॉर्ड प्रबंधन प्रणाली शामिल हो सकती है। भवन का डिजाइन इस प्रकार होना चाहिए कि स्वच्छता जैव सुरक्षा तथा कार्य दक्षता बनाए रखी जा सके।वीर्य भंडारण क्षेत्र विशेष रूप से सुरक्षित होना चाहिए क्योंकि यहां अत्यंत निम्न तापमान पर वीर्य संग्रहित किया जाता है। पर्याप्त वेंटिलेशन तथा सुरक्षा उपाय आवश्यक हैं ताकि दुर्घटनाओं से बचा जा सके।

आवश्यक उपकरण एवं सामग्री

कृत्रिम गर्भाधान केन्द्र के संचालन के लिए विभिन्न उपकरणों की आवश्यकता होती है। इनमें कृत्रिम गर्भाधान गन वीर्य स्ट्रॉ तरल नाइट्रोजन कंटेनर थर्मामीटर जल स्नान इकाई दस्ताने तथा प्रयोगशाला उपकरण शामिल होते हैं। उपकरणों की गुणवत्ता सीधे सेवा की गुणवत्ता को प्रभावित करती है। निम्न गुणवत्ता वाले उपकरण गर्भाधान सफलता दर को कम कर सकते हैं। नियमित रखरखाव एवं अंशांकन भी आवश्यक है ताकि उपकरण प्रभावी ढंग से कार्य करते रहें। आधुनिक केन्द्रों में डिजिटल रिकॉर्डिंग तथा डेटा प्रबंधन प्रणालियों का उपयोग भी बढ़ रहा है।

तरल नाइट्रोजन एवं वीर्य भंडारण

कृत्रिम गर्भाधान कार्यक्रमों की सफलता में तरल नाइट्रोजन का अत्यंत महत्वपूर्ण योगदान है। वीर्य को लगभग माइनस 196 डिग्री सेल्सियस तापमान पर संरक्षित किया जाता है। इस तापमान पर शुक्राणुओं की चयापचय क्रियाएं लगभग रुक जाती हैं जिससे उन्हें लंबे समय तक सुरक्षित रखा जा सकता है। यदि भंडारण के दौरान तापमान में परिवर्तन होता है तो शुक्राणुओं की जीवित रहने की क्षमता प्रभावित हो सकती है। इसलिए नाइट्रोजन स्तर की नियमित निगरानी तथा समय

पर पुनः भराई आवश्यक होती है।

मानव संसाधन

एक प्रभावी कृत्रिम गर्भाधान केन्द्र के लिए प्रशिक्षित मानव संसाधन आवश्यक हैं। पशु चिकित्सक कृत्रिम गर्भाधान तकनीशियन तथा प्रयोगशाला सहायक केन्द्र की सफलता में महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं। तकनीकी दक्षता के अभाव में सेवा गुणवत्ता प्रभावित हो सकती है। प्रशिक्षित कर्मियों को ऊष्मा पहचान वीर्य हैंडलिंग गर्भाधान तकनीक संक्रमण नियंत्रण तथा रिकॉर्ड प्रबंधन का ज्ञान होना चाहिए। निरंतर प्रशिक्षण कार्यक्रम उनके कौशल विकास के लिए आवश्यक हैं।

जैव सुरक्षा एवं स्वच्छता

जैव सुरक्षा किसी भी कृत्रिम गर्भाधान केन्द्र का महत्वपूर्ण घटक है। संक्रमण नियंत्रण हेतु उपकरणों की नियमित सफाई विसंक्रमण तथा व्यक्तिगत सुरक्षा उपायों का पालन आवश्यक है। संक्रामक प्रजनन रोगों की रोकथाम के लिए मानक प्रक्रियाओं का पालन किया जाना चाहिए। स्वच्छ वातावरण न केवल सेवा गुणवत्ता को बेहतर बनाता है बल्कि रोग प्रसार के जोखिम को भी कम करता है।

अभिलेख प्रबंधन

रिकॉर्ड प्रबंधन कृत्रिम गर्भाधान कार्यक्रम की सफलता का आधार है। प्रत्येक पशु का विवरण गर्भाधान तिथि प्रयुक्त वीर्य गर्भ जांच परिणाम तथा प्रसव संबंधी जानकारी व्यवस्थित रूप से दर्ज की जानी चाहिए। इससे कार्यक्रम की प्रभावशीलता का मूल्यांकन करना संभव होता है। डिजिटल रिकॉर्डिंग प्रणालियों के उपयोग से डेटा विश्लेषण अधिक सरल तथा प्रभावी हो गया है।

आर्थिक एवं सामाजिक महत्व

कृत्रिम गर्भाधान केन्द्र किसानों की आय वृद्धि में महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं क्योंकि श्रेष्ठ आनुवंशिक क्षमता वाले पशु अधिक उत्पादन देते हैं। इससे दुग्ध उत्पादन मांस उत्पादन तथा पशुधन उत्पादकता में वृद्धि होती है।

इसके अतिरिक्त ऐसे केन्द्र रोजगार सृजन में भी योगदान देते हैं। तकनीशियन पशु स्वास्थ्य कार्यकर्ता तथा संबंधित सेवाओं में रोजगार के अवसर बढ़ते हैं।

निष्कर्ष

कृत्रिम गर्भाधान केन्द्र की स्थापना आधुनिक पशुपालन विकास की दिशा में अत्यंत महत्वपूर्ण कदम है। यह केवल गर्भाधान सेवा प्रदान करने तक सीमित नहीं है बल्कि नस्ल सुधार उत्पादकता

वृद्धि रोग नियंत्रण तथा ग्रामीण विकास का प्रभावी माध्यम है। उचित योजना प्रशिक्षित मानव संसाधन गुणवत्तापूर्ण वीर्य वैज्ञानिक प्रबंधन तथा प्रभावी जैव सुरक्षा के माध्यम से कृत्रिम गर्भाधान केन्द्र पशुधन विकास एवं किसानों की आर्थिक उन्नति में महत्वपूर्ण योगदान दे सकते हैं। विशेष रूप से भारत जैसे देशों में जहां पशुपालन लाखों परिवारों की आजीविका का आधार है कृत्रिम गर्भाधान केन्द्रों का विस्तार सतत विकास के लिए अत्यंत उपयोगी सिद्ध हो सकता है।

दुधारू पशुओं में संक्रमण काल (Transition Period) का प्रबंधन एवं पशु उत्पादकता पर उसका प्रभाव

आलोक कुमार
बिहार वेटेरिनरी कॉलेज, बिहार पशु चिकित्सा विज्ञान विश्वविद्यालय,पटना

प्रस्तावना

भारत एक कृषि प्रधान देश है जहाँ पशुपालन ग्रामीण अर्थव्यवस्था के सबसे महत्वपूर्ण घटकों में से एक माना जाता है। दुधारू पशुओं का पालन केवल दूध उत्पादन तक सीमित नहीं है बल्कि यह लाखों कृषक परिवारों की आजीविका पोषण सुरक्षा तथा सामाजिक–आर्थिक विकास से भी प्रत्यक्ष रूप से जुड़ा हुआ है। गाय एवं भैंस जैसे दुधारू पशुओं से प्राप्त दूध प्रोटीन वसा विटामिन तथा खनिजों का महत्वपूर्ण स्रोत होने के कारण मानव पोषण में अत्यंत उपयोगी माना जाता है। भारत विश्व का सबसे बड़ा दुग्ध उत्पादक देश होने के बावजूद प्रति पशु उत्पादकता अभी भी कई विकसित देशों की तुलना में कम है। इसका प्रमुख कारण पशुओं में वैज्ञानिक प्रबंधन पद्धतियों का सीमित उपयोग, संतुलित पोषण की कमी, संक्रमण एवं चयापचय संबंधी रोगों की अधिकता तथा पशुओं के संक्रमण काल के दौरान समुचित देखभाल का अभाव माना जाता है।

दुधारू पशुओं की उत्पादकता को प्रभावित करने वाले विभिन्न कारकों में संक्रमण काल (**Transition Period**) को सबसे महत्वपूर्ण एवं संवेदनशील अवस्था माना जाता है। संक्रमण काल वह समय होता है जिसमें पशु गर्भावस्था की अवस्था से उच्च दुग्ध उत्पादन की अवस्था में प्रवेश करता है। यह अवधि सामान्यतः प्रसव से लगभग तीन सप्ताह पूर्व आरंभ होकर प्रसव के लगभग तीन सप्ताह बाद तक मानी जाती है, यद्यपि कुछ शोधकर्ता इसे अधिक विस्तृत रूप में प्रसव से लगभग 45 से 60 दिन पूर्व तथा प्रसव के 30 दिन बाद तक भी मानते हैं। इस अवधि में पशु के शरीर में व्यापक शारीरिक, हार्मोनल, चयापचयीय तथा प्रतिरक्षात्मक परिवर्तन होते हैं, जो उसकी उत्पादकता स्वास्थ्य एवं प्रजनन क्षमता को प्रत्यक्ष रूप से प्रभावित करते हैं।

संक्रमण काल के दौरान एक ओर गर्भस्थ भ्रूण का विकास तीव्र गति से हो रहा होता है वहीं दूसरी ओर पशु का शरीर आगामी दुग्ध उत्पादन के लिए स्वयं को तैयार कर रहा होता है। परिणामस्वरूप ऊर्जा, प्रोटीन खनिज एवं अन्य पोषक तत्वों की आवश्यकता बढ़ जाती है। इस अवधि में अक्सर ऐसा देखा जाता है कि पशु की आहार ग्रहण क्षमता कम हो जाती है जबकि पोषण

की आवश्यकता बढ़ती रहती है। यह स्थिति नकारात्मक ऊर्जा संतुलन उत्पन्न करती है जो अनेक चयापचय संबंधी विकारों जैसे कीटोसिस, फैटी लीवर सिंड्रोम तथा दूध ज्वर का प्रमुख कारण बन सकती है। इसलिए संक्रमण काल का सफल प्रबंधन दुधारू पशुओं के स्वास्थ्य एवं उत्पादकता बनाए रखने के लिए अत्यंत आवश्यक माना जाता है।

दुधारू पशुओं में संक्रमण काल की अवधारणा

संक्रमण काल आधुनिक डेयरी प्रबंधन का एक महत्वपूर्ण विषय है क्योंकि इसी अवधि के दौरान पशु के शरीर में गर्भावस्था से दुग्ध उत्पादन की अवस्था में परिवर्तन होता है। यह परिवर्तन केवल बाह्य रूप से दिखाई देने वाला परिवर्तन नहीं होता बल्कि यह शरीर की लगभग सभी प्रमुख जैविक प्रणालियों को प्रभावित करता है। अंतःस्रावी तंत्र प्रतिरक्षा तंत्र पाचन तंत्र तथा ऊर्जा चयापचय प्रणाली में होने वाले परिवर्तन पशु के स्वास्थ्य एवं उत्पादन क्षमता पर दीर्घकालिक प्रभाव डाल सकते हैं।

गर्भावस्था के अंतिम चरण में भ्रूण का विकास अत्यंत तीव्र गति से होता है। अनुमानतः भ्रूण का अधिकांश विकास गर्भावस्था के अंतिम दो से तीन महीनों में होता है। इस समय भ्रूण को पर्याप्त पोषण उपलब्ध कराने के लिए माता पशु के शरीर पर अतिरिक्त भार पड़ता है। इसके साथ ही दुग्ध ग्रंथियों का विकास प्रारंभ हो जाता है ताकि प्रसव के बाद पर्याप्त मात्रा में दूध का उत्पादन संभव हो सके। परिणामस्वरूप पशु की ऊर्जा एवं पोषण आवश्यकता में निरंतर वृद्धि होती रहती है। प्रसव के समय हार्मोनल परिवर्तनों की तीव्रता अपने उच्चतम स्तर पर पहुँच जाती है। एस्ट्रोजन, प्रोजेस्टेरोन, कोर्टिसोल एवं प्रोलैक्टिन जैसे हार्मोन प्रसव प्रक्रिया को नियंत्रित करने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं। प्रसव के बाद दुग्ध उत्पादन अचानक बढ़ जाता है तथा पशु के शरीर को इस नई शारीरिक अवस्था के अनुरूप स्वयं को अनुकूलित करना पड़ता है। यही कारण है कि संक्रमण काल को उच्च जोखिम वाली अवस्था माना जाता है।

संक्रमण काल के दौरान होने वाले शारीरिक एवं चयापचयीय परिवर्तन

संक्रमण काल के दौरान पशु के शरीर में अनेक जटिल परिवर्तन होते हैं। प्रसव से पहले जैसे–जैसे भ्रूण का आकार बढ़ता है वैसे–वैसे उदर गुहा में स्थान कम होने लगता है, जिसके कारण पशु की आहार ग्रहण क्षमता घट सकती है। इसके विपरीत ऊर्जा की आवश्यकता बढ़ती रहती है। इस असंतुलन के कारण शरीर ऊर्जा की पूर्ति हेतु वसा भंडार का उपयोग करना प्रारंभ कर देता है। यदि यह स्थिति अधिक समय तक बनी रहे तो पशु में नकारात्मक ऊर्जा संतुलन विकसित हो सकता है। नकारात्मक ऊर्जा संतुलन की अवस्था में शरीर में मुक्त वसीय अम्लों की

मात्रा बढ़ जाती है जो यकृत पर अतिरिक्त दबाव उत्पन्न करती है। परिणामस्वरूप फैटी लीवर सिंड्रोम जैसी समस्याएँ विकसित हो सकती हैं। इसी प्रकार ऊर्जा की कमी के कारण कीटोन बॉडी का निर्माण बढ़ जाता है जिससे कीटोसिस जैसी चयापचय संबंधी बीमारी उत्पन्न हो सकती है। ये विकार पशु के स्वास्थ्य दुग्ध उत्पादन तथा प्रजनन क्षमता पर प्रतिकूल प्रभाव डालते हैं।

संक्रमण काल का पशु उत्पादकता पर प्रभाव

दुधारू पशुओं की उत्पादकता केवल उनकी आनुवंशिक क्षमता पर निर्भर नहीं करती बल्कि संक्रमण काल के दौरान अपनाई गई प्रबंधन रणनीतियों पर भी निर्भर करती है। जिन पशुओं में संक्रमण काल का प्रबंधन संतुलित पोषण, उचित स्वास्थ्य देखभाल तथा वैज्ञानिक प्रबंधन के माध्यम से किया जाता है उनमें दुग्ध उत्पादन अधिक तथा रोगों की संभावना कम देखी जाती है। इसके विपरीत खराब संक्रमण काल प्रबंधन के कारण पशु में उत्पादकता घट सकती है तथा प्रजनन संबंधी समस्याएँ उत्पन्न हो सकती हैं। संक्रमण काल का प्रभाव दुग्ध उत्पादन की मात्रा तक सीमित नहीं रहता बल्कि दुग्ध की गुणवत्ता वसा प्रतिशत प्रोटीन मात्रा तथा पशु के संपूर्ण स्वास्थ्य को भी प्रभावित करता है। इसलिए आधुनिक डेयरी प्रबंधन में संक्रमण काल को उत्पादकता वृद्धि का महत्वपूर्ण आधार माना जाता है।

निष्कर्ष

दुधारू पशुओं में संक्रमण काल एक अत्यंत महत्वपूर्ण अवस्था है जिसमें पशु गर्भावस्था से दुग्ध उत्पादन की अवस्था में प्रवेश करता है। इस अवधि में होने वाले शारीरिक, हार्मोनल एवं चयापचयीय परिवर्तन पशु स्वास्थ्य दुग्ध उत्पादन तथा प्रजनन क्षमता को प्रभावित करते हैं। यदि इस समय संतुलित पोषण स्वास्थ्य निगरानी तथा वैज्ञानिक प्रबंधन उपाय अपनाए जाएँ तो पशु की उत्पादकता एवं आर्थिक लाभ में उल्लेखनीय वृद्धि संभव है। अतः संक्रमण काल का समुचित प्रबंधन आधुनिक डेयरी उद्योग की सफलता के लिए अत्यंत आवश्यक माना जाता है।

किसान स्तर पर स्वच्छ दुग्ध उत्पादन एवं इसका महत्व

अनुराधा कुमारी[1] एवं नीरज कुमार सिंह[2]
[1]संजय गाँधी गव्य प्रौद्योगिकी संस्थान, बिहार पशु विज्ञान विश्वविद्यालय, पटना
[2]को.वा.स., किशनगंज, बिहार पशु विज्ञान विश्वविद्यालय, पटना

सारांश

स्वच्छ दुग्ध उत्पादन से तात्पर्य उस समग्र एवं वैज्ञानिक प्रक्रिया से है जिसमें दूध के उत्पादन, दुहन, संग्रहण, भंडारण तथा परिवहन के प्रत्येक चरण में स्वच्छता, स्वास्थ्य और गुणवत्ता के मानकों का कडाई से पालन किया जाता है। इसका मुख्य उद्देश्य यह सुनिश्चित करना है कि उपभोक्ता तक पहुँचने वाला दूध रोगाणु–मुक्त, सुरक्षित, पौष्टिक तथा उच्च गुणवत्तायुक्त हो। इस प्रक्रिया की शुरुआत सीधे किसान के खेत या डेयरी इकाई से होती है, क्योंकि दूध की गुणवत्ता का निर्धारण सर्वप्रथम वहीं होता है। स्वच्छ दुग्ध उत्पादन के अंतर्गत पशु के स्वास्थ्य और स्वच्छता पर विशेष ध्यान दिया जाता है। स्वस्थ, रोग–मुक्त पशु से प्राप्त दूध ही उत्तम गुणवत्ता का होता है। दूध दुहने वाले व्यक्ति की व्यक्तिगत स्वच्छता भी अत्यंत महत्वपूर्ण है। दुहन के पश्चात दूध को तुरंत छानना, ढककर रखना तथा यथासंभव शीघ्र ठंडा करना स्वच्छ दुग्ध उत्पादन का महत्वपूर्ण भाग है। इस प्रकार, स्वच्छ दुग्ध उत्पादन एक निरंतर प्रक्रिया है, जिसमें किसान स्तर पर अपनाई गई छोटी–छोटी सावधानियाँ दूध की गुणवत्ता, उपभोक्ता स्वास्थ्य और दुग्ध उद्योग की सफलता में महत्वपूर्ण भूमिका निभाती हैं।

सूचक शब्द: स्वच्छ दुग्ध उत्पादन, दूध की गुणवत्ता, स्वस्थ्य पशु

परिचय

स्वच्छ दुग्ध उत्पादन से तात्पर्य है कि दूध निकालने से लेकर उसके संग्रहण और परिवहन तक की प्रत्येक प्रक्रिया को पूर्ण स्वच्छता, साफ–सफाई और वैज्ञानिक तरीकों से किया जाए, ताकि दूध सुरक्षित, पौष्टिक और गुणवत्तायुक्त बना रहे। यह प्रक्रिया सीधे किसान के खेतध्डेयरी पर प्रारम्भ होती है। स्वस्थ दूधारू पशुओं से निकाला गया दूध, जिसे साफ और सूखे बर्तन में संग्रहित किया गया हो, और जो धूल, मक्खियों, गोबर, घास जैसी अशुद्धियों से मुक्त हो, जिसमें दूध के प्राकृतिक अवयव और स्वाद बने रहें, जीवाणुओं की मात्रा कम हो और जो मानव उपभोग के लिए सुरक्षित हो, उसे स्वच्छ दूध कहा जाता है। स्वच्छ दूध उत्पादन का अर्थ है कि दूध में बाहरी पदार्थ, बीमारी फैलाने वाले जीवाणु, और दवाओं के अवशेष न हों। पशु के थन से निकला हुआ दूध सबसे ज्यादा स्वच्छ होता है लेकिन इसके बाद अगर हम सफाई का ध्यान नहीं रखे तो यह अस्वच्छ हो सकता है। इसमें बाल, चारे का कचरा, दाने, मिट्टी के कण और सूक्ष्म जीवाणु आदि

मौजूद हो सकते हैं। अस्वच्छ दूध का सेवन करने से हमे कई तरह की बीमारियाँ हो सकती है जैसे टी.बी, टाईफाईड, पैरा टाइफाईड, अन्डूलेन्टिंग फीवर, पेचिश, गैस्ट्रोइन्टेराइटिस इत्यादि। दूध में अगर जीवाणुओ की संख्या अगर ज्यादा होतो यह दूध की अम्लता को बढ़ा देता है और इस तरह के दूध को गरम करने से यह फैट जाता है, जिससे किसान को आर्थिक हानि का सामना करना पड़ सकता है। अतः स्वच्छ दुग्ध उत्पादन का पालन करना अति आवश्यक है।

किसान स्तर पर स्वच्छ दुग्ध उत्पादन की प्रमुख विधियाँ

पशु की स्वच्छता – स्वच्छ दुग्ध उत्पादन का आधार

स्वच्छ दुग्ध उत्पादन में पशु की स्वच्छता का अत्यंत महत्वपूर्ण स्थान है, क्योंकि दूध सीधे पशु के थन से प्राप्त होता है। यदि पशु साफ नहीं होगा तो दूध में गंदगी, रोगाणु और हानिकारक सूक्ष्मजीव आसानी से मिल सकते हैं, जिससे दूध की गुणवत्ता और सुरक्षा प्रभावित होती है। दूध दुहने से पहले पशु को साफ रखना आवश्यक है। पशु के शरीर पर लगी मिट्टी, गोबर, धूल और बाल दूध दुहते समय बर्तन में गिर सकते हैं। इसलिए नियमित रूप से पशु को नहलाना, शरीर की ब्रश से सफाई करना तथा दुहाई से पहले पेट, पैरों और पूंछ के आसपास की गंदगी हटाना चाहिए। इससे दूध में भौतिक अशुद्धियाँ कम होती हैं। थन एवं थनाग्र (Teats) की सफाई विशेष रूप से आवश्यक होती है, क्योंकि दूध इन्हीं के माध्यम से निकलता है। दूध दुहने से पहले थन और थनाग्र को स्वच्छ, साफ पानी से अच्छी तरह धोना चाहिए और फिर स्वच्छ एवं सूखे कपडे या तौलिये से पोंछना चाहिए। गीले थन से दूध दुहने पर पानी के साथ बैक्टीरिया भी दूध में जा सकते हैं। साफ–सफाई से थनैला (Mastitis) जैसी बीमारियों की संभावना भी कम होती है। बीमार पशु का दूध अलग निकालना स्वच्छ दुग्ध उत्पादन का एक महत्वपूर्ण नियम है। थनैला, बुखार, दस्त या किसी संक्रामक रोग से ग्रसित पशु का दूध सामान्य दूध में नहीं मिलाना चाहिए, क्योंकि ऐसा दूध स्वास्थ्य के लिए हानिकारक हो सकता है और पूरे दूध को खराब कर सकता है। बीमार पशु का दूध अलग बर्तन में निकालकर पशु चिकित्सक की सलाह अनुसार उपयोग या नष्ट करना चाहिए। इस प्रकार पशु की स्वच्छता बनाए रखने से न केवल दूध की गुणवत्ता और सुरक्षा सुनिश्चित होती है, बल्कि पशु का स्वास्थ्य भी बेहतर रहता है और दुग्ध उत्पादन में निरंतरता बनी रहती है।

दुहने के बर्तन – स्वच्छ दुग्ध उत्पादन में भूमिका

स्वच्छ दुग्ध उत्पादन में दूध दुहने के बर्तनों की स्वच्छता और गुणवत्ता का अत्यंत महत्वपूर्ण योगदान होता है। यदि बर्तन साफ और उपयुक्त सामग्री के नहीं होंगे तो दूध में तुरंत गंदगी और रोगाणु मिल सकते हैं, जिससे दूध की गुणवत्ता खराब हो जाती है। दूध दुहने के लिए स्टेनलेस स्टील या एल्यूमिनियम के बर्तन का उपयोग करना चाहिए। ये बर्तन चिकनी सतह वाले, मजबूत और जंग–रोधी होते हैं, जिससे इनमें दूध के कण नहीं चिपकते और इन्हें साफ करना

आसान होता है। साथ ही ये दूध के साथ किसी प्रकार की रासायनिक प्रतिक्रिया नहीं करते, जिससे दूध का स्वाद और पोषण मूल्य सुरक्षित रहता है।

प्रत्येक दुहाई के बाद बर्तनों को गर्म पानी और उपयुक्त डिटर्जेंट से अच्छी तरह धोकर सुखाना अत्यंत आवश्यक है। गर्म पानी से धोने पर दूध की चिकनाई और प्रोटीन के अवशेष आसानी से निकल जाते हैं तथा बैक्टीरिया नष्ट होते हैं। धोने के बाद बर्तनों को उल्टा करके साफ और सूखी जगह पर सुखाना चाहिए, ताकि उनमें नमी न रहे और रोगाणुओं की वृद्धि न हो।

प्लास्टिक या जंग लगे बर्तनों का प्रयोग नहीं करना चाहिए, क्योंकि प्लास्टिक के बर्तनों में खरोंच पड जाती है, जिनमें गंदगी और बैक्टीरिया जमा हो जाते हैं और इन्हें पूरी तरह साफ करना कठिन होता है। जंग लगे बर्तन दूध को दूषित कर सकते हैं और उसके स्वाद, रंग तथा गुणवत्ता को खराब कर देते हैं। ऐसे बर्तन स्वास्थ्य के लिए भी हानिकारक हो सकते हैं। अतः स्वच्छ, उचित और अच्छी गुणवत्ता वाले दुहने के बर्तनों का प्रयोग कर किसान न केवल दूध की गुणवत्ता बनाए रख सकता है, बल्कि उपभोक्ता को सुरक्षित और शुद्ध दूध उपलब्ध कराने में भी महत्वपूर्ण भूमिका निभा सकता है।

साफ पशु शाला

स्वच्छ दूध उत्पादन के लिए पशुशाला का वातावरण साफ और सुरक्षित होना बहुत महत्वपूर्ण है। पशुशाला में उचित वेंटिलेशन होना चाहिए ताकि ताजा हवा का प्रवाह बना रहे और बदबू या हानिकारक गैसें न जमें। नियमित सफाई से इसे साफ और सूखा रखना चाहिए, ताकि मक्खियों, मच्छरों, और अन्य कीटों से बचा जा सके। फर्श पक्का और गैर–फिसलन वाला होना चाहिए, जिससे फिसलने का खतरा कम हो और सफाई में आसानी हो। मूत्र और पानी के निकासी की उचित व्यवस्था होनी चाहिए ताकि फर्श पर गंदगी जमा न हो और नमी न रहे। पशुशाला में पर्याप्त प्राकृतिक प्रकाश होना चाहिए, क्योंकि सूर्य की किरणों से जीवाणुओं का नाश होता है और पशुओं के स्वास्थ्य पर सकारात्मक प्रभाव पड़ता है। गोबर और अन्य कचरे का नियमित रूप से उचित प्रबंधन करना चाहिए। इसके लिए एक अलग स्थान या गड्ढा होना चाहिए, ताकि पशुशाला के आस–पास गंदगी न फैले और संक्रामक रोगों का खतरा न हो। पशुओं को दिए जाने वाले चारे और पानी को साफ और शुद्ध रखना चाहिए। गंदे चारे या पानी से दूध में संक्रमण का खतरा बढ़ जाता है। पशुओं के लिए आरामदायक बिछावन होना चाहिए, जो सूखा और नरम हो, ताकि वे आराम से विश्राम कर सकें। बिछावन नियमित रूप से बदलना चाहिए, ताकि गंदगी और रोगाणु न पनपें। मक्खियों, मच्छरों, और चूहों जैसे कीटों से बचने के लिए उचित कीट नियंत्रण उपाय किए जाने चाहिए। इस प्रकार, एक स्वच्छ और सुव्यवस्थित पशुशाला, स्वच्छ दूध उत्पादन के लिए आवश्यक है, क्योंकि यह दूध को बाहरी दूषित तत्वों से बचाती है और पशुओं के स्वास्थ्य को बनाए रखने में मदद करती है।

साफ और स्वास्थ्यकर दुहन

स्वच्छ दूध उत्पादन के लिए साफ और स्वास्थ्यकर दुहन (दूध निकालने की प्रक्रिया) बेहद जरूरी है। इससे दूध की गुणवत्ता सुनिश्चित होती है और इसे बाहरी दूषित तत्वों से बचाया जा सकता है। यदि हाथ से दुहना हो, तो इसे कोमलता से किया जाना चाहिए, ताकि पशु को किसी प्रकार की चोट न पहुंचे। हाथ की सफाई पर विशेष ध्यान देना चाहिए। यदि मशीन का उपयोग हो रहा है, तो सुनिश्चित करें कि मशीन की नलिकाएं और अन्य हिस्से साफ और कीटाणु–मुक्त हों। मशीन के हर उपयोग के बाद इसे अच्छी तरह से धोकर सुखाना चाहिए। दुहने के दौरान पशु को शांत और तनावमुक्त वातावरण में रखना चाहिए। किसी भी प्रकार का शोर या हलचल उसे परेशान कर सकता है, जिससे दुहने की प्रक्रिया प्रभावित होती है। दूध दुहते समय शुरू के कुछ धारे एक पात्र में एकत्रित करे और इसका प्रयोग ना करे । दुहने से पहले गाय या भैंस के थनों को गुनगुने पानी और साफ कपड़े से धोना चाहिए, ताकि उन पर जमी धूल, गोबर या अन्य गंदगी साफ हो जाए। थनों को अच्छी तरह से सुखाने के बाद ही दूध निकालने की प्रक्रिया शुरू की जानी चाहिए, ताकि नमी से जीवाणु न पनपें। यदि कोई पशु बीमार हो, तो उसका दूध निकालने से पहले पशु चिकित्सक की सलाह लेनी चाहिए, क्योंकि बीमार पशु का दूध दूषित हो सकता है।

दुहने वाले व्यक्ति का स्वास्थ्य

दुहने वाले व्यक्ति की स्वच्छता स्वच्छ दुग्ध उत्पादन के लिए अत्यंत आवश्यक है। दूध दुहने से पहले हाथों को साबुन और स्वच्छ पानी से अच्छी तरह धोना चाहिए। हाथों की सफाई से दूध में रोगाणुओं के प्रवेश की संभावना कम हो जाती है। नाखून हमेशा कटे हुए, छोटे और साफ होने चाहिए। लंबे या गंदे नाखूनों में गंदगी और बैक्टीरिया जमा हो जाते हैं। हाथों पर मिट्टी, गोबर या चिकनाई नहीं होनी चाहिए।

यदि हाथों पर कोई घाव, फोडा या संक्रमण हो तो दुहाई नहीं करनी चाहिए। दुहने वाले व्यक्ति को स्वच्छ और साफ कपडे पहनने चाहिए। गंदे कपडों से धूल और कीटाणु दूध में गिर सकते हैं। संभव हो तो दुहाई के लिए अलग कपडे निर्धारित करने चाहिए। व्यक्तिगत स्वच्छता से दूध की गुणवत्ता बनी रहती है। इससे उपभोक्ता स्वास्थ्य सुरक्षित रहता है और किसान को बेहतर मूल्य मिलता है।

स्वच्छ दुग्ध उत्पादन का महत्व

1. दूध की गुणवत्ता में सुधार

- बैक्टीरिया की संख्या कम रहती है।
- दूध लंबे समय तक खराब नहीं होता।

2. उपभोक्ता स्वास्थ्य की सुरक्षा

- दूध से होने वाली बीमारियों (जैसे दस्त, टायफॉइड, फूड पॉइजनिंग) से बचाव।
- बच्चों और बुजुर्गों के लिए सुरक्षित दूध।

3. किसान की आय में वृद्धि

- गुणवत्तायुक्त दूध का बेहतर मूल्य मिलता है।
- डेयरी सहकारी समितियों द्वारा बोनस/प्रोत्साहन।

4. दुग्ध उत्पादों की बेहतर गुणवत्ता

- दही, पनीर, घी, खोया आदि की गुणवत्ता अच्छी रहती है।
- प्रसंस्करण में नुकसान कम होता है।

5. राष्ट्रीय स्तर पर दुग्ध गुणवत्ता सुधार

- स्वच्छ दूध से निर्यात की संभावनाएँ बढती हैं।
- देश की दुग्ध उद्योग की प्रतिष्ठा बढती है।

निष्कर्ष

किसान स्तर पर स्वच्छ दुग्ध उत्पादन अपनाकर न केवल दूध की गुणवत्ता और उपभोक्ता स्वास्थ्य की रक्षा की जा सकती है, बल्कि किसानों की आय में भी वृद्धि संभव है। यह एक सरल, कम लागत वाली और अत्यंत आवश्यक प्रक्रिया है, जिसे प्रत्येक दुग्ध उत्पादक किसान को अपनाना चाहिए।

पशुपालन संबंधी कारकों का दूध की संरचना पर प्रभाव

अनुराधा कुमारी[1] एवं नीरज कुमार सिंह[2]

[1]संजय गाँधी गव्य प्रौद्योगिकी संस्थान, बिहार पशु विज्ञान विश्वविद्यालय, पटना

[2]को.वा.स., किशनगंज, बिहार पशु विज्ञान विश्वविद्यालय, पटना

सारांश

डेयरी उद्योग भारत की अर्थव्यवस्था का एक महत्वपूर्ण हिस्सा है, जो ग्रामीण रोजगार और पोषण सुरक्षा में योगदान देता है। डेयरी गायों द्वारा उत्पादित दूध की गुणवत्ता और संरचना न केवल पोषण संबंधी मूल्य निर्धारित करती है बल्कि डेयरी उत्पादों के प्रसंस्करण और विपणन को भी प्रभावित करती है। दूध में वसा, प्रोटीन, लैक्टोज, खनिज और विटामिन जैसे विभिन्न पोषक तत्व होते हैं, जिनकी मात्रा केवल पशु पर ही नहीं, बल्कि फार्म प्रबंधन पर भी निर्भर करती है।

सूचक शब्द: फार्म कारक**,** दूध की गुणवत्ता**,** दूध की संरचना।

विभिन्न फार्म कारक दूध की मात्रा और गुणवत्ता दोनों को प्रभावित करते हैं।

कारकों को निम्नलिखित समूहों में विभाजित किया जाता है –

(क) पशु संबंधी कारक (Animal factors)

(ख) पर्यावरणीय एवं अन्य कारक (Environmental and other factors)

(क) पशु संबंधी कारक

(1) प्रजाति (Species):

विभिन्न प्रजातियों के पशुओं के दूध की संरचना में अंतर पाया जाता है।

•दूध की संरचना में यह भिन्नता अनेक कारकों पर निर्भर करती है, इसलिए इसे सटीक रूप से निर्धारित करना कठिन होता है।

•सामान्यतः जिन पशुओं के बच्चों की वृद्धि दर तेज होती है, उनके दूध में वृद्धि के लिए आवश्यक पोषक तत्व अधिक सघन (अधिक मात्रा में) पाए जाते हैं।

युवा स्तनधारियों (young mammals) की वृद्धि दर का उनकी माँ के दूध में उपस्थित प्रोटीन की मात्रा से गहरा संबंध

प्रजाति	जन्म के समय के वजन को दोगुना करने में लगने वाले दिन	दूध में प्रोटीन प्रतिशत की मात्रा
आदमी	180	1.6
गाय	47	3.5
भेड़	15	4.80
सूकर	14	5.21
बिल्ली	9.5	7.00
खरगोश	6	10.38

(2) नस्ल (Breed):

दूध की संरचना पर नस्ल का गहरा प्रभाव पड़ता है। नस्ल के कारण होने वाला यह अंतर सबसे अधिक वसा में स्पष्ट दिखाई देता है, जबकि अन्य ठोस घटकों (solid constituents) पर भी प्रभाव पड़ता है, लेकिन अपेक्षाकृत कम मात्रा में। सामान्यतः, जिस दूध में वसा का प्रतिशत अधिक होता है, उसमें SNF की मात्रा भी अधिक होती है, और इसके विपरीत भी सत्य है (जब एक नस्ल के दूध की तुलना दूसरी नस्ल से की जाती है)।

Breed	Water	Fat	Protein	Lactose	Ash	SNF
Jersey	85.27	5.14	3.8	5.04	0.75	9.59
Guernsey	85.47	4.96	3.84	4.98	0.75	9.57
Ayrshire	87.1	3.85	3.34	5.02	0.69	9.05
Short Horn	87.43	3.03	3.32	4.89	0.73	8.94
Friesian	88.01	3.45	3.15	4.65	0.68	8.48

जर्सी और ग्वेर्नसी नस्ल की गायों के दूध में वसा एवं प्रोटीन की मात्रा सबसे अधिक पाई जाती है, जबकि होल्सटीन/फ्रीजियन नस्ल की गायों के दूध में इनकी मात्रा अपेक्षाकृत सबसे कम होती है।

Breed	% Fat	% SNF
Murrah	6.8	10.1
Jaffarabadi	7.3	10.1
Surti	8.4	10.3

मान्यता प्राप्त 10 भैंस नस्लों जैसे–मुर्रा, नीली–रावी, भदावरी, मेहसाना, सुरती, जाफराबादी, पंढरपुरी, मराठवाड़ा, नागपुरी तथा टोडा में से भदावरी नस्ल (मध्य प्रदेश एवं उत्तर प्रदेश) एक महत्वपूर्ण नस्ल है, जो दूध में उच्च वसा प्रतिशत के लिए प्रसिद्ध है। इस नस्ल के दूध में वसा की मात्रा लगभग 13 प्रतिशत तक पाई जाती है।

(3) व्यक्तिगत पशु (Individual Cow):

यद्यपि प्रत्येक पशु अपने द्वारा उत्पादित दूध में अपनी नस्ल की विशेषताओं को बनाए रखता है, फिर भी अलग–अलग पशुओं के बीच दूध की संरचना में भिन्नता पाई जाती है।यह भिन्नता पशु के व्यक्तिगत आनुवंशिक गुणों पर भी निर्भर करती है। उचित प्रजनन प्रबंधन अपनाकर किसी व्यक्तिगत दुग्ध पशु में दूध का वसा प्रतिशत अधिक प्राप्त किया जा सकता है।

(4) थन के विभिन्न भाग :

जिस थन से सबसे पहले दूध निकाला जाता है, उस भाग के दूध में वसा की मात्रा सामान्यतः सबसे अधिक होती है, जबकि अंत में दुहे गए थन के दूध में वसा की मात्रा सबसे कम पाई जाती है। थन के विभिन्न भागों से प्राप्त दूध की समग्र संरचना में कुछ अंतर हो सकता है।

जब दुग्ध मशीन का उपयोग किया जाता है और चारों थनों से एक साथ दूध निकाला जाता है, तब सभी भागों से प्राप्त दूध में वसा प्रतिशत लगभग समान होता है।

(5) दुग्धकाल (Lactation Period) का दूध की संरचना पर प्रभाव: दुग्धकाल वह अवधि होती है जिसमें पशु बछड़ा देने के बाद दूध उत्पादन करता है। दुग्धकाल के विभिन्न चरणों में दूध की संरचना में परिवर्तन देखा जाता है।

1. प्रारंभिक दुग्धकाल (Early Lactation)

बछड़ा देने के तुरंत बाद निकलने वाले दूध को खीस (Colostrum) कहा जाता है।

इसमें प्रोटीन, वसा, खनिज तथा रोग प्रतिरोधक तत्व (एंटीबॉडी) अधिक मात्रा में पाए जाते हैं।

इस अवधि में सामान्य दूध की तुलना में लैक्टोज की मात्रा कम होती है।

2. मध्य दुग्धकाल (Mid Lactation)

इस अवस्था में दूध की संरचना अपेक्षाकृत स्थिर रहती है। दूध उत्पादन अधिक मात्रा में होता है। वसा, प्रोटीन और अन्य ठोस तत्व सामान्य स्तर पर बने रहते हैं।

3. अंतिम दुग्धकाल (Late Lactation)

इस अवस्था में दूध की मात्रा कम होने लगती है। दूध में वसा और प्रोटीन प्रतिशत सामान्यतः बढ़ जाता है। लैक्टोज की मात्रा थोड़ी कम हो सकती है। इस प्रकार दुग्धकाल के अलग–अलग चरण दूध की गुणवत्ता और पोषक तत्वों की मात्रा को प्रभावित करते हैं।

दूध का pH एक स्पष्ट प्रवृत्ति दर्शाता है। खीस का pH लगभग 6 होता है, जो बछड़ा देने (Parturition) के कुछ समय बाद बढ़कर सामान्य स्तर 6.6–6.7 हो जाता है। इसके बाद दुग्धकाल के अधिकांश समय तक pH में बहुत कम परिवर्तन होता है, लेकिन दुग्धकाल के अंतिम चरण में pH बढ़कर लगभग 7.2 तक पहुँच सकता है, जो रक्त केpH के निकट होता है।

मास्टाइटिस (थनैला रोग) के संक्रमण के दौरान भी दूध का pH बढ़कर लगभग 6.8–6.9 हो जाता है। यह वृद्धि रक्त से विभिन्न घटकों के दूध में आने के कारण होती है।

(6) आहार एवं पोषण स्तर (Feeds and Nutritional Level):

सामान्यतः पशु को उसकी देखभाल और अधिकतम दूध उत्पादन की आवश्यकता से अधिक आहार देने पर दूध की संरचना में विशेष परिवर्तन नहीं होता है। अधिक आहार देने का मुख्य प्रभाव पशु के शरीर में चर्बी बढ़ने के रूप में दिखाई देता है।

अपर्याप्त आहार देने से दूध की मात्रा कम हो जाती है तथा पशु के शरीर में संचित वसा भंडार भी

कम होने लगता है।

जब गायों को कम रेशायुक्त (Low roughage) आहार दिया जाता है, तो दूध की मात्रा में अधिक परिवर्तन नहीं होता, लेकिन दूध में वसा की मात्रा में स्पष्ट कमी आ सकती है। इसलिए कम रेशायुक्त आहार दूध के वसा प्रतिशत को घटाने वाला प्रभाव डालता है।

कम रेशायुक्त आहार (Low Roughage Ration): कम रेशायुक्त आहार देने पर दूध में वसा का संश्लेषण कम हो जाता है। हालांकि रफेज की मात्रा कम करने से SNF (Solid Not Fat) की मात्रा पर सामान्यतः अधिक या स्थायी प्रभाव नहीं पड़ता है।

तेलों का प्रभाव (Effect of Oils): पाम ऑयल, मक्खन वसा (Butter fat), लार्ड तथा नारियल तेल जैसे वसा युक्त पदार्थ खिलाने से दूध में वसा प्रतिशत बढ़ जाता है, जबकि कॉड लिवर ऑयल का प्रभाव इसके विपरीत होता है। गायों को प्रतिदिन लगभग 6 से 8 औंस मछली का तेल (कॉड लिवर ऑयल) विटामिन A और D की मात्रा बढ़ाने के उद्देश्य से खिलाने पर दूध की वसा मात्रा कम हो जाती है।

फैटी एसिड का प्रभाव: असंतृप्त फैटी एसिड (Unsaturated fatty acids) सामान्यतः दूध की वसा को कम करने का प्रभाव डालते हैं, जबकि संतृप्त वसा (Saturated fat) दूध में वसा प्रतिशत बढ़ाते हैं।

घास एवं हरे चारे का प्रभाव: घास खिलाने से दूध में असंतृप्त वसा की मात्रा बढ़ती है। ताजा चरागाह, विशेषकर क्लोवर और अल्फाल्फा युक्त घास, सूखी घास (Hay) या साइलेंज की तुलना में कैरोटिनॉइड्स से अधिक समृद्ध होती है।

कैरोटिनॉइड का प्रभाव: आहार में कैरोटिनॉइड की मात्रा जितनी अधिक होगी, दूध और दूध की वसा का रंग उतना ही पीला होगा। उदाहरण के लिए, चरागाह में चरने वाली गायों से प्राप्त मक्खन का रंग सर्दियों में दिए जाने वाले आहार से प्राप्त मक्खन की तुलना में अधिक पीला होता है।

अधिक प्रोटीन आहार का प्रभाव: अधिक प्रोटीन युक्त आहार देने से दूध के प्रोटीन प्रतिशत में विशेष परिवर्तन नहीं होता, लेकिन नॉन–प्रोटीन नाइट्रोजन की मात्रा बढ़ सकती है। कुछ अध्ययनों में यह भी पाया गया है कि केवल गैर–प्रोटीन आहार देने से दूध के प्रोटीन प्रतिशत में थोड़ी कमी आ सकती है।

लैक्टोज की मात्रा में कोई परिवर्तन नहीं होता है।

(7) दूध की संरचना पर मास्टाइटिस का प्रभाव

1. दूध उत्पादन में कमी: मास्टाइटिस होने पर थन ग्रंथियों की कार्यक्षमता कम हो जाती है, जिससे दूध की मात्रा घट जाती है। गंभीर स्थिति में प्रभावित थन से दूध निकलना लगभग बंद हो सकता है।

2. वसा की मात्रा में कमी : संक्रमित थन से प्राप्त दूध में वसा की मात्रा कम हो जाती है, जिससे दूध का पोषण मूल्य और प्रसंस्करण गुणवत्ता प्रभावित होती है।

3. लैक्टोज की मात्रा में कमी : मास्टाइटिस के कारण दूध में लैक्टोज का स्तर घट जाता है, जिससे दूध का स्वाद और ऊर्जा मूल्य कम हो जाता है।

4. प्रोटीन संरचना में परिवर्तन : दूध में केसिन की मात्रा कम हो जाती है तथा सीरम प्रोटीन की मात्रा बढ़ जाती है। इससे दूध से बने उत्पादों जैसे पनीर और दही की गुणवत्ता प्रभावित होती है।

5. खनिज तत्वों में परिवर्तन : मास्टाइटिस के कारण दूध में सोडियम और क्लोराइड की मात्रा बढ़ जाती है, जबकि कैल्शियम और फॉस्फोरस की मात्रा कम हो सकती है।

6. सोमैटिक सेल काउंट में वृद्धि : संक्रमित दूध में सोमैटिक कोशिकाओं की संख्या बढ़ जाती है, जो दूध की गुणवत्ता खराब होने का संकेत है।

7. दूध के pH में परिवर्तन : मास्टाइटिस के कारण दूध का pH बढ़ जाता है, जिससे दूध अधिक क्षारीय (Alkaline) हो जाता है।

8. दूध की शेल्फ लाइफ में कमी : संक्रमित दूध जल्दी खराब हो जाता है और उससे बने उत्पादों की गुणवत्ता भी कम हो जाती है।

(8) हार्मोन का दूध की संरचना पर प्रभाव

हार्मोन दूध के निर्माण, स्राव तथा थन ग्रंथियों के विकास को नियंत्रित करते हैं।

(क) प्रोलैक्टिन : यह हार्मोन दूध के निर्माण के लिए जिम्मेदार होता है। दूध में प्रोटीन, लैक्टोज और वसा के निर्माण में महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है।

(ख) ऑक्सीटोसिन : यह हार्मोन दूध के निष्कासन (Milk Let-down) में सहायता करता है। यह दूध की संरचना को सीधे प्रभावित नहीं करता, लेकिन दूध निकालने की प्रक्रिया को सुचारू बनाता है।

(ग) एस्ट्रोजन : यह हार्मोन थन ग्रंथियों के विकास में सहायक होता है। गर्भावस्था के दौरान इसकी अधिक मात्रा दूध उत्पादन को कम कर सकती है।

(9) पशुओं की आयु का दूध की संरचना पर प्रभाव

गाय की आयु बढ़ने के साथ दूध की संरचना में कुछ महत्वपूर्ण परिवर्तन देखे जाते हैं। सामान्यतः गाय की उम्र बढ़ने पर दूध में वसा का औसत प्रतिशत थोड़ा कम हो जाता है।

इसी प्रकार, दूध में ठोस–अवसा रहित पदार्थ (SNF – Solid Not Fat) की मात्रा में भी धीरे–धीरे, यद्यपि अनियमित रूप से, कमी देखी जाती है।

आयु बढ़ने के साथ SNF प्रतिशत में होने वाली कमी, वसा प्रतिशत में होने वाली कमी की तुलना में लगभग दो गुना अधिक होती है।

SNF के मुख्य घटक लैक्टोज और केसिन होते हैं, जो गाय के वृद्ध होने पर सबसे अधिक

प्रभावित होते हैं।

(ख) पर्यावरणीय एवं अन्य कारक

(1) दूध दुहने की दक्षता एवं दुहने के अंतराल का दूध की संरचना पर प्रभाव

1. दुग्ध दुहने की दक्षता (Milking Efficiency) का प्रभाव

दुग्ध दुहने की दक्षता से तात्पर्य है कि पशु के थन से दूध को पूरी तरह और सही तरीके से निकाला जाए।

दूध में वसा की मात्रा पर प्रभाव : यदि दूध पूरी तरह नहीं निकाला जाता है, तो दूध में वसा प्रतिशत कम हो जाता है। दुहने के अंत में निकलने वाला दूध (Strippings) अधिक वसा युक्त होता है। अधूरा दुहना दूध की गुणवत्ता को प्रभावित करता है।

दूध उत्पादन पर प्रभाव: सही और नियमित दुहाई से दूध उत्पादन बढ़ता है। अधूरी दुहाई से थन में दूध जमा रहता है, जिससे अगली बार दूध बनने की प्रक्रिया कम हो सकती है।

पशु स्वास्थ्य पर प्रभाव : अधूरा दुहना थन रोग (मास्टाइटिस) की संभावना बढ़ा सकता है।

2. दुहने के अंतराल का प्रभाव : दुहने के अंतराल का अर्थ है दो बार दुहाई के बीच का समय।

दूध की मात्रा पर प्रभाव : अधिक अंतराल होने पर दूध की मात्रा बढ़ सकती है, लेकिन गुणवत्ता प्रभावित हो सकती है। बहुत कम अंतराल होने पर दूध की मात्रा कम हो सकती है।

वसा प्रतिशत पर प्रभाव : लंबे अंतराल के बाद प्राप्त दूध में वसा प्रतिशत सामान्यतः कम होता है। छोटे अंतराल पर दुहे गए दूध में वसा प्रतिशत अधिक हो सकता है।

दूध की संरचना पर प्रभाव : अनियमित दुहाई से दूध में वसा, प्रोटीन और अन्य घटकों का संतुलन प्रभावित हो सकता है। नियमित समय पर दुहाई करने से दूध की गुणवत्ता स्थिर रहती है।

(2) **ऋतु (मौसम) का दूध की संरचना पर प्रभाव**

1. ग्रीष्म ऋतु (गर्मी) का प्रभाव

गर्मी के मौसम में अधिक तापमान के कारण पशु तनाव (Heat Stress) में आ जाते हैं। पशु कम चारा खाते हैं, जिससे दूध उत्पादन घट जाता है।

गर्मी में दूध का फैट प्रतिशत सामान्यतः कम हो जाता है। पशु की ऊर्जा खपत बढ़ने से दूध की गुणवत्ता प्रभावित होती है।

गर्म मौसम में दूध में प्रोटीन और लैक्टोज की मात्रा भी कम हो सकती है।

2. शीत ऋतु (सर्दी) का प्रभाव

ठंड के मौसम में पशु अधिक चारा खाते हैं और तनाव कम रहता है। इससे दूध उत्पादन बढ़ जाता है।

सर्दियों में दूध में फैट और SNF प्रतिशत सामान्यतः अधिक पाए जाते हैं। दूध की गुणवत्ता बेहतर रहती है।

3. वर्षा ऋतु का प्रभाव

वर्षा ऋतु में हरा चारा अधिक उपलब्ध होता है, जिससे दूध उत्पादन बढ़ सकता है। लेकिन अधिक नमी और गंदगी से पशुओं में रोग होने की संभावना बढ़ जाती है।

इस मौसम में संक्रमण का खतरा बढ़ सकता है, जिससे दूध की गुणवत्ता प्रभावित हो सकती है।

दूध में फैट कंटेंट बढ़ाने के लिए पशु को क्या खिलाएँ

1. हरा चारा (Green Fodder)

हरा चारा दूध में फैट बढ़ाने में बहुत महत्वपूर्ण होता है। हरा चारा रूमेन (पेट) के स्वास्थ्य को सुधारता है और फैट उत्पादन बढ़ाता है, जैसे बरसी, नेपियर घास, ज्वार, बाजरा, मक्का का हरा चारा

2. सूखा चारा (Dry Fodder)

सूखा चारा फाइबर का अच्छा स्रोत होता है, जो दूध में फैट बढ़ाने में सहायक है। जैसे अच्छा गुणवत्ता वाला भूसा (गेहूं या धान का), सूखी घास । पशु के आहार में पर्याप्त रेशे (फाइबर) होना जरूरी है, क्योंकि इससे दूध का फैट बढ़ता है।

3. संतुलित पशु आहार (Concentrate Feed) संतुलित आहार ऊर्जा और पोषक तत्व प्रदान करता है।जैसे सरसों खली, सोयाबीन खली, चना चूरी, मक्का और जौ

4. तेल और वसा युक्त आहार: कुछ मात्रा में वसा देने से दूध में फैट बढ़ता है। जैसे सरसों या अलसी की खली, बायपास फैट

5. मिनरल मिक्सचर और नमक: मिनरल मिक्सचर नियमित देना चाहिए।नमक (लिकिंग सॉल्ट) पशु के लिए जरूरी है यह दूध की गुणवत्ता और उत्पादन दोनों सुधारता है।

6. साफ पानी की पर्याप्त उपलब्धता: पशु को हमेशा साफ और पर्याप्त पानी देना चाहिए। पानी की कमी से दूध उत्पादन और फैट दोनों कम हो सकते हैं।

7. अच्छा प्रबंधन और स्वास्थ्य देखभाल: पशु को तनाव मुक्त रखें, समय पर दुग्ध दोहन करें, थन की सफाई रखें, रोगों से बचाव करें।

बिहार पशु विज्ञान विश्वविद्यालय
पटना–800014, बिहार

नामांकन नोटिस

बिहार पशु विज्ञान विश्वविद्यालय, पटना के अधीन बिहार पशु चिकित्सा महाविद्यालय,पटना एवं संजय गाँधी गव्य प्रौद्योगिकी संस्थान, पटना में शैक्षणिक सत्र 2025–2026 में नये पाठ्यक्रम शुरू किए जा रहा है, नामांकन हेतु विवरणी निम्नवत् है:–

बिहार पशु चिकित्सा महाविद्यालय, पटना

कोर्स का नाम	अवधि
बी.एस.सी. (पोल्ट्री प्रोडक्शन)	3 वर्ष (6 सेमेस्टर)

पैरा वेटरनरी साइंसेज

कोर्स का नाम	अवधि
डिप्लोमा इन वेटरनरी एंड लाइवस्टॉक डेवलपमेंट (डी.वी.एल.डी.)	2 वर्ष (4 सेमेस्टर)
डिप्लोमा इन वेटरनरी लेबोरेटरी टेक्नोलॉजी (डी. वी. एल. टी.)	2 वर्ष (4 सेमेस्टर)
सर्टिफिकेट कोर्स इन आर्टिफिशियल इन्सेमिनेशन	3 माह

पोस्ट ग्रेजुएट डिप्लोमा

ऑनलाईन – वेटरनरी होम्योपैथी, एथ्नोवेटरनरी मेडिसिन, वन हेल्थ,
ऑफलाईन – बोवाइन क्लिनिकल प्रैक्टिस, कैनाइन एंड फेलाइन क्लिनिकल प्रैक्टिस ।

एडवांस ट्रेनिंग कोर्स ऑन इम्पॉर्टेंट वेटरनरी क्लिनिकल प्रोसीजर
अवधि: 3 सप्ताह, प्रवेश क्षमता: 6

सर्टिफिकेट कोर्स

वेटरनरी फॉरेंसिक साइंस, सीमन हैंडलिंग एवं आर्टिफिशियल इन्सेमिनेशन, मॉलिक्यूलर डायग्नोसिस ऑफ इन्फेक्शस डिजीजेस, वेटरनरी डायग्नॉस्टिक इमेजिंग, एम्ब्रायो ट्रांसफर टेक्नोलॉजी (आईवीएफ) इन बोवाइन।

ऑनलाइन पाठ्यक्रम

फीड एवं फॉडर टेक्नोलॉजी पर ऑनलाइन शार्ट कोर्स
प्रसार एवं उद्यमिता विकास पर ऑनलाइन शार्ट कोर्स

संजय गाँधी गव्य प्रौद्योगिकी संस्थान, पटना

कोर्स का नाम	अवधि
बी.टेक. (एफ.टी.)	4 वर्ष (8 सेमेस्टर)

प्रवेश क्षमता, अवधि एवं सभी कोर्स की विस्तृत जानकारी हेतु विश्वविद्यालय की वेबसाइट **www. basu.org.in** पर अपलोड किए गए विवरण पुस्तिका को देखें।

बिहार पशु विज्ञान विश्वविद्यालय

BIHAR ANIMAL SCIENCES UNIVERSITY

Bihar Animal Sciences University Social Networking Platforms

- **Facebook:** www.facebook.com/basu.org
- **X (formerly Twitter):** https://x.com/basupatna
- **Instagram:** https://www.instagram.com/basupatna
- **LinkedIn:** https://www.linkedin.com/in/biharasu
- **YouTube:** https://youtube.com/@basupatna

प्रसार शिक्षा निदेशालय
बिहार पशु विज्ञान विश्वविद्यालय, पटना-14